‘ जैनहितैषी ’ के बारहवें वर्षका उपहार

मणिभद्र ।

(एक धार्मिक उपन्यास ।)

श्रीयुक्त सुशीलके ‘ महावीर-भक्त मणिभद्र ’
नामक गुजराती उपन्यासका
अनुवाद ।

अनुवादक,

श्रीयुत उदयलाल काशलीवाल ।

प्रकाशक,

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव—बम्बई ।

संम्वत् १९७३ फाल्गुन ।

मूल्य दस आने ।

प्रकाशक,
नाथूराम प्रेमी,
प्रोप्राइटर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव-बम्बई।

मुद्रक,
रा. रा. चिन्तामण सखाराम देवळे,
'बम्बई-वैभव प्रेस'-सँढर्स्ट रोड,
गिरगाँव-बम्बई।

समर्पण ।

जिनके
उदार-उन्नत-प्रेममय हृदय-सरोवरकी
शीतल सुधा-धाराने
अभिसिंचित कर
मुझे
जीवन भरके लिए
कृतार्थ किया;
और
जिनकी प्रेमपूर्ण सहानुभूतिने
मेरे
जीवनके विषम मार्गको
सरल बनाया;
उन
उत्साही सुशील बन्धु
वर्धा-निवासी
श्रीयुत सेठ चिरंजीलालजीके
कर-कमलोंमें
यह
पवित्र उपहार
अनुवादक द्वारा
प्रेमपूर्वक
समर्पित है ।

कृतज्ञता ।

१

गत वर्ष ' जैनहितैषी ' के उपहारमें ' अन्नपूर्णाके मन्दिर ' के साथ ' नमिराज ' नामका एक और उपन्यास देना निश्चित किया था; और उसके खर्चेका सब भार जैनहितैषीके एक अतिशय प्रेमी राजपूताना प्रान्तके उदार सज्जनने अपने ऊपर ले लिया था; परन्तु कई कारणोंसे उक्त उपन्यास अब तक तैयार न हो सका । इस कारण उसके बदलेमें अब यह उपन्यास पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया जाता है । यह उपन्यास भी बहुत श्रेष्ठ और जैन-साहित्य-संसारमें एक नई वस्तु होगी । कारण इसके लेखक बड़े विचारशील और प्रतिभाशाली लेखक हैं । हमें विश्वास है, कि सहृदय पाठक इसे पढ़ कर आनन्दके साथ साथ बहुत कुछ शिक्षा भी ग्रहण कर सकेंगे ।

हमें यह लिखते हुए बहुत आनन्द होता है कि जैनहितैषीके पिछले वर्षके ग्राहकोंको जो यह उपहार दिया जाता है, इसमें जितना खर्च पड़ेगा वह सब उक्त सज्जन महाशयने ही देना स्वीकार किया है । आपकी इस उदारताके लिए हम बहुत ही कृतज्ञ हैं । हमारी इच्छा थी कि इस पुस्तकमें आपका सुन्दर चित्र और नाम रहता तो बहुत अच्छा होता; पर खेद है कि बहुत कुछ आग्रह करने- पर भी आपने अपना नाम और चित्र देना स्वीकार नहीं किया । आपकी इस गुप्त दानशीलताकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है ।

२

गुजरातीमें इस उपन्यासके प्रकाशक श्रीयुत मेघजी हीरजी हैं । आपके भी हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि आपने हमें इसके प्रकाशित करनेकी स्वीकारता देकर अनुगृहीत किया ।

कृतज्ञ,

नाथूराम प्रेमी ।

अनुक्रमणिका।

मूल लेखककी प्रस्तावना।

वास्तवमें एक छोटेसे साम्प्रदायिक उपन्यासके लिए प्रस्तावनाकी कोई जरूरत न थी; परन्तु वर्तमान साहित्य-क्षेत्रमें जो प्रस्तावना लिखनेकी एक रूढ़िसी पड़ गई है उसे उलंघन करनेका हममें साहस नहीं है। इस कारण 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' की उक्तिका आश्रय लेकर प्रस्तावनाके रूपमें हम दो बातें कहना चाहते हैं।

एक पाश्चात्य विद्वानने साहित्यके उत्तमताकी कसौटी यह बतलाई है कि "जिस साहित्यके द्वारा थोड़ेसे समयमें पाठकगण नाना तरहकी भावनाओंका लाभ उठा सकें वह साहित्य श्रेष्ठ साहित्य है।" हमने भी अपने इस उपन्यासमें शक्तिभर इसी पद्धतिका अनुसरण करनेका यत्न किया है। ऐसे साहित्यमें एक और विशेषता होती है; और वह यह कि इतिहास वगैरह अन्य साहित्यके अनुशीलनमें पाठकोंके मनको जितना कष्ट उठाना पड़ता है उतना कष्ट ऐसे मनोरंजक कथा-साहित्यके अनुशीलनमें नहीं उठाना पडता; और उसकी वर्णनीय वस्तुकी छाप परोक्ष रीतिसे ही पाठकोंके हृदय-पट पर अंकित हो जाती है। एक लेखक अपने चिर समयके अनुभवकी छाप कथा-साहित्यके द्वारा पाठकोंके हृदय पर जितनी स्पष्ट अंकित कर सकता है उतनी स्पष्ट अन्य जरियेसे शायद ही कोई अंकित कर सके। इसके अनेक कारणोंमें एक यह भी मुख्य कारण है कि कथा-साहित्य वाँछित भावनाओंके धारण करनेका अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक आधार है। इस प्रकारकी भावनायें हृदय पर अपना आधिपत्य इतनी अच्छी तरह जमा लेती हैं कि उसकी पाठकोंको खबर तक भी नहीं पड़ पाती। ये भावनायें बुद्धिके नीरस तर्क-वादके बदले हृदयकी सरस सहानुभूतिके बलसे पाठकोंके मनको अपने वश करती हैं। इससे लेखक और पाठक दोनोंका कार्य सरल हो जाता है। यही नहीं; किन्तु दोनोंका प्रयत्न बहुत कुछ सफल होता है। इतना कह कर अब हम कथाके भीतर भागमें प्रवेश करते हैं।

इस उपन्यासकी कथा-कल्पना महावीर भगवानके समयमें की गई है। और इसके लिए हमें वीरप्रभुके समकालीन महात्मा गौतम बुद्धके साहित्यका भी आश्रय लेना

पड़ा है। यह बात कोई ढाई हजार वर्ष पहलेकी है। उस समयकी परिस्थितिका उल्लेख करते समय प्रसंग-वश हमें एक-दो जगह उस समय जैनों और ब्राह्मणोंमें जो स्पर्धा चल रही थी उसका भी जिकर करना पड़ा है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो यह संभव नहीं था कि इस उपन्यासमें उस समयकी प्रचलित भावनाओं–विचारोंको उचित न्याय मिलता। इस पर यह विश्वास करना उचित नहीं कि लेखकने जो इस पारस्परिक स्पर्धाका उल्लेख किया है वह किसी प्रकारकी ईर्ष्या या द्वेष-वश किया है। ऐसा करनेसे लेखकके विचारोंके प्रति अन्याय होगा। ऐसा करनेसे हमारा यही उद्देश्य है कि एक तो ऐतिहासिक सत्यकी रक्षा हो और दूसरे इस समय जो लोगोंमें साम्प्रदायिक-मोह-मुग्धता और मताग्रह है उसके प्रति उनकी अरुचि हो। यह बात हम अच्छी तरह जानते हैं कि इस समय पुराने विरोधको फिरसे जिलानेका प्रयत्न करना बड़ी भारी मूर्खता है। अब हम यह बात समझने लग गये हैं कि 'सत्य' पर किसी धर्म या सम्प्रदायका मौरुसी हक नहीं है। सत्यको देश-काल बाधा नहीं पहुँचा सकते। इस प्रगतिशील युगमें यह कह कर हँसी कराना है कि "सत्यको हम ही पहचानते हैं और हमारे ही ग्रन्थों या आफिसोंमें सत्य अक्षरोंके रूपमें, विराज रहा है" है। परन्तु जब कोई सम्प्रदाय-मुग्ध मनुष्य कर्म-जड़तामें पड़ कर आन्तरारिक स्वरूपके समझनेके यत्नको छोड़ बैठता है तब उसका अपने मतके प्रति प्रेम और दूसरे मतोंके प्रति द्वेष कितना बढ़ जाता है, इसी विषयका खाका खींचनेका हमने यह प्रयत्न किया है। हमारा यह प्रयत्न बहुत ही सादे रूपमें है– अपनी ओरसे इसमें रंग भरनेका प्रयत्न नहीं किया गया है। किन्तु इस विषयका उल्लेख कर पाठकोंको एक प्रकारसे यह स्पष्ट सूचना करदी गई है कि साम्प्रदायिक-मोह-मुग्धतासे जो अनिष्ट परिणाम उत्पन्न होते हैं उनसे वे सावधान रहें।

कथाके पात्रोंके सम्बन्धमें भी इस स्थल पर कुछ स्पष्टीकरण करना हमें आवश्यक प्रतीत होता है। इस कथाका मुख्य पात्र मणिभद्र है। उसे वीरप्रभुके मार्गके प्रति अत्यन्त अनुराग है; और प्रभुने जो आत्माका परम मंगलमय मार्ग बतलाया है उसमें उसने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। जिस समय मणिभद्रको यह निश्चित रूपसे जान पड़ा कि वीरप्रभु उसकी जन्मभूमि श्रावस्तीमें पधारनेवाले हैं उस समय उसे प्रभुके दर्शनकी जो उत्सुकता हुई–अपने

मूर्तिमान् आदर्शके साक्षात् अवलोकनकी जो आतुरता बढ़ी–उसे देख कर एक अतिशय भक्तात्माके हृदयमें भक्तिका उद्रेक कितना बढ़ जाता है, इस विषयका बहुत कुछ भान हो सकेगा। उस दैवी अभिलाषा और हृदयके अपार उल्लासका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिसे हृदयकी इस प्रकारकी स्थितिके अनुभव करनेका कभी प्रसंग नहीं पड़ा उसके पास भक्त मणिभद्रकी उस अवस्थाके जाननेका कोई साधन नहीं है। जिन जिन हृदयोंमें इस दिव्य गुणका कुछ प्रवेश हुआ है उन उन महात्माओंकी अद्भुत बातें हम भक्तात्माओंके चरित्रोंमें पढ़ते हैं। हम यह मानते हैं कि उनमें कहीं कहीं अतिशयोक्ति भी की गई है। किन्तु इतने पर भी अनेक महानुभावोंका कहना है कि यह 'दिव्य उन्माद' वास्तविक सत्य है। इस अवस्थाके सम्बन्धमें ऍमर्सनने–जिनने कि चिरकाल तक ईश्वरीय स्वरूपका अनुभव किया था– लिखा है–

'Always I believe, by the necessity of our constitution a certain Enthusiasm attends the individual consciousness of that divine presence. The character and duration of this enthusiasm varies with the state of the individual, from an ecstacy and trance and prophetic inspiration, which is its rarest appearance, to the faintest glow of virtuous emotion, in which from it warms, like our household fires, all the families and associations of men.

अर्थात् जान पड़ता है, हम लोगोंकी रचना ही एक ऐसे प्रकारकी है कि ईश्वरके सर्वव्यापी अस्तित्वके कारण मनुष्योंमें एक खास प्रकारका उत्साह रहता है। प्रत्येक मनुष्यकी स्थितिके अनुसार उस उत्साहका स्वरूप और काल-मर्यादा भिन्न भिन्न होती है। ब्रह्मानन्द, समाधि और आत्म-स्फूर्त्ति—जो कि क्वचित् ही दिखाई पड़ती हैं—एक सद्गुणके आवेगकी अवस्थायें हैं। जब यह उत्साह सद्गुणके रूपमें परिणत होता है तब वह विशाल अग्निकी भाँति अपने आस-पासके परिवार और मित्रों पर्यन्त अपनी आँच पहुँचाता है।

मणिभद्रका उत्साह भी इसी प्रकारका था। और इसी कारण उसके हृदयकी आँच सारे कुटुम्ब और समाज पर्यन्त पहुँच जाती है; और वह फिर अपने सद्गुणके आवेगमें सबको साथ लिये चलती है। हृदयमें इस प्रकारकी प्रीति और

महा पुरुषोंके चरित्र पर सरल निष्कपट भक्तिका होना इस युगमें बहुत ही दुर्लभ है। हृदयमें जब किसी प्रकारके सत्यका उदय होता है तब उस सत्यके साक्षात्कार और प्रतीतिके अनुरूप समाज पर उसका असर पड़े बिना नहीं रहता। इस हृदयकी आगके सम्बन्धमें महात्मा ऍमर्सनने लिखा है—

It is a fire that kindling its first embers in the narrow nook of a private bosom, caught from a wandering spark out of another private heart, glares and enlarges until it warms and beams upon the universal heart of all, and so lights up the whole world and all nature with its generous flames.

अर्थात् वह अग्नि किसी व्यक्तिके हृदयमें जलती हुई अग्निकी चिनगारीका सम्बन्ध पाकर दूसरे व्यक्तिके हृदयमें प्रज्वलित हो उठती है; और बढ़ते बढ़ते फिर इतनी बढ़ जाती है कि असंख्य स्त्री-पुरुष उसके प्रकाशसे आनन्द लाभ करते हैं—सबके हृदयोंको वह प्रकाशित और आनन्दित कर देती है; और इस प्रकार फिर वह सारे विश्वको ही अपने विशाल प्रकाशमें ले आती है।

इसी भाँति मणिभद्रने भी वीरप्रभुके हृदयमेंसे इस आगकी एक चिनगारी लेकर उसे प्रेममय विचारोंसे इतना प्रज्वलित किया कि उसके प्रकाशमें उसके समाज और विरोधी कुटुम्बको भी आ जाना पड़ा।

इस उपन्यासमें दूसरा उल्लेख योग्य पात्र रत्नमाला है, जिसने कि आत्म-विवाहकी पवित्र गाँठसे मणिभद्रके साथ अपनेको बाँधा है। इस वीर बालाके तेजस्वी आत्माका परिचय उस समय मिलता है जब कि सुभद्र काम-वासनाका दास बनकर इस देवीके पास आता है। जिस भाँति प्रकाश और अन्धकारके युद्धमें प्रकाशहीकी विजय होती है उसी भाँति रत्नमालाके दिव्य प्रकाशके सामने सुभद्र पराजित होता है। और जिस भाँति सबल (Positive)से निर्बल (Negative) को पराजित होना पड़ता है; उसी भाँति सुभद्रको रत्नमालासे पराजित होना पड़ता है। रत्नमालाके दिव्य प्रभावके सामने सुभद्रकी सब पाप-वासनायें क्षण भरमें नष्ट होकर उसके हृदयमें पवित्र भावनाओंका उदय होता है और फिर वह रत्नमालाके चरणोंमें अपना सिर रख देता है।

इन सब बातोंसे भी अधिक उत्तम बात इस उपन्यासमें एक और ग्रहण करने

योग्य है। वह है मणिभद्र और रत्नमालाका ब्रह्मचर्य। इन पवित्रात्माओंने जिस आत्म-विवाहके द्वारा अपना पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ा है वह इस युगमें सर्वथा ही विलुप्त हो गया है और उल्टा एक प्रश्नसा उपस्थित हो गया है कि ऐसा सम्बन्ध हो सकता है या नहीं? इस युगमें हम सब, हमारे हृदयोंमें प्रकृतिकी स्थापित की हुई प्रजनन-वृत्ति (Instinct of race Propagation) के अधीन होकर अपनेसे विरोधी जाति (Sex) के साथ सम्बन्ध करते हैं। हम सत्यको इतना भूल बैठे हैं कि विवाहका उद्देश सन्तानोत्पादनके सिवा और कुछ समझते ही नहीं। हमें इस जड़वादके युगमें इस बातका भान ही नहीं रहा है कि उन्नतिके कामोंमें दम्पति परस्पर कितने सहायक होते हैं और एकका एक उत्साह बढ़ानेमें अपना हृदय-बल कितना प्रगट करने लगते हैं। हम लोगोंका ऐसा विश्वास हो गया है कि ब्याहका उद्देश अपनी जातिको उत्पन्न करनेके सिवा कुछ नहीं है। परन्तु यदि ब्याह द्वारा मनुष्य जातिकी संख्या-वृद्धि करना ही प्रकृतिका उद्देश्य होता तो फिर पशुत्त्व और मनुष्यत्त्वमें कुछ भी भेद नहीं रहता। इस विषयमें एक विद्वानने लिखा है—

The opinion is very general that the primary use of the or gans of generation is for the purpose of procreation; this however, is an error. Their principal use is to generate that creative fluid which truly contains the seed of future generations, *but which* is primarily designed to enrich our whole being, increasing our physical powers, enlarging and broadening the mind. The purpose of procreation *is secondary to this. No one should* think of allowing this precious seed to escape from their body except at such times as husband and wife both mutually desire offspring.

अर्थात् लोगोंका यह विश्वास है कि प्रजनन इन्द्रियका हेतु सन्तानोत्पादन करना ही है। परन्तु यह एक बड़ी भारी भूल है। इस इन्द्रियका मुख्य हेतु एक प्रवाही द्रव्यको उत्पन्न करना है जो कि वास्तवमें भविष्यत्सन्ततिका बीजभूत है। परन्तु उसका मूल हेतु तो शरीर-संगठनको सुदृढ़ कर; मानसिक-शक्तिको उन्नत और विशाल बनानेका है; और सन्तानोत्पादन गौण हेतु है। इस कारण दम्प-

तिको सन्तान उत्पादनकी इच्छाके सिवा कभी इस अमूल्य वस्तुको शरी... नहीं निकलने देना चाहिए।

मणिभद्र और रत्नमाला इन दोनोंमें किसीको भी सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा नहीं थी। तब उनके लिए इस प्रकारका शरीर-सम्बन्ध प्रकृतिके नियमसे सर्वथा विरुद्ध ही था।

लोगोंमें एक और मूर्खतापूर्ण विश्वास चला आता है। वे कहते हैं कि प्रकृतिका ऐसा संकेत है कि दम्पति स्थूल भोगों द्वारा ही एक दूसरे पर प्रेमका प्रकाश कर सकते हैं। किन्तु इसके समान और कोई मूर्खता नहीं है। कारण विषय-वासना और प्रेममें प्रकाश और अन्धकारके जितना अन्तर है। विषयाचरण प्रेमका पोषक न होकर विघातक है। जहाँ विषय-वासना निरन्तर अपनी भोग-तृष्णाकी तृप्ति ढूँढ़ती रहती है वहाँ प्रेम परस्परके उच्च भावोंको परिस्फुट करनेमें यत्नशील रहता है। विषयकी प्रेरणा किया हुआ यदि पुरुष हुआ तो वह स्त्रीको अपना भोज्य पदार्थ समझता है और स्त्री हुई तो पुरुषको अपनी वासना-तृप्तिका शस्त्र समझती है। और प्रेम इससे उल्टा है। वह भोग-वासनाको न ढूँढ़ कर जिसमें अपनी और दूसरेकी उच्चता समाई हुई होती है उस मार्गमें अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। विषय अन्धा है और प्रेम बुद्धि और विवेककी सहायतासे उन्नतिके मार्गमें बड़ी तीव्र गतिसे दौड़ता है। जहाँ प्रेम होता है वहाँ विषय-वासनाको स्थान नहीं होता और जहाँ विषय-वासना है वहाँ प्रेम शोभा नहीं पा सकता। प्रेमीका अधिकार और स्थान भी बहुत उन्नत है। इस कारण हम सबको इसी उच्च अधिकार और उच्च स्थानके प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनी चाहिए।

मनुष्य जैसे जैसे उत्क्रान्तिके मार्गमें आगे आगे बढ़ते जाते हैं वैसे वैसे वे विषय-वासनासे मुक्ति लाभ करते हुए विशुद्ध प्रेमका अनुभव करने लगते हैं। और फिर उनके हृदयकी प्रेम-भावनायें दिन दिन अधिक अधिक स्पष्ट, सत्य और प्रगाढ़ होती जाती हैं। उनके हृदयका विषय-वासना रूपी सब कीचड़ धुल कर वह स्वच्छ-निर्मल हो जाता है। ऐसे प्रेमियोंके लिए फिर आत्मा ही सार पदार्थ हो जाता है। उन्हें शारीरिक बातोंका अनुभव फिर कुछ भी आनंदित या सुखी नहीं कर सकता। इस शरीर-सम्बन्धी आनन्दकी आत्म-विवाहके साथ तुलना करनेसे वह इतना घृणित जान पड़ने लगता है कि आत्म-विवाहका अनु-

भव करनेवाले महापुरुषोंकी उसके प्रति फिर बिल्कुल ही रुचि नहीं रहती। ऐसे लोगोंको विकारोंके रोकनेका भी फिर प्रति क्षण प्रयत्न नहीं करना पड़ता। कारण वे विकार-जन्य आनन्दका अनुभव न करके उससे अनन्त गुणे आत्म-सम्बन्धसे होनेवाले उच्च और असीम आनन्दका अनुभव करने लगते हैं। इसी प्रकारका आत्म-विवाह मणिभद्र और रत्नमालाका हुआ है। यही विवाह हम लोगोंका आदर्श होना चाहिए। इस सम्बन्धका यथार्थ आशय ही यह है कि हम लोग विषयोंसे मुक्त होकर शुद्ध आत्म-प्रेमके अनुभव करनेकी भावना रक्खें।

इस उपन्यासमें इस बातके दिखानेका भी यत्न किया गया है कि उस समय वीरप्रभुका समाज पर कितना प्रभाव था। वीरप्रभुके प्रभुत्त्वको देख कर फिर यह आश्चर्य नहीं रहता जो प्रभु जहाँ जहाँ पधारते थे वहाँ वहाँकी जनता उनकी दिव्य प्रतिमाके तेजसे क्यों चकचौंधिया जाती। उस समय चाहे कैसी ही विरोध-विद्वेषपूर्ण परिस्थिति क्यों न होती, परन्तु जहाँ प्रभु उस ओर गये कि सब विरोधियोंको अपने आप ही प्रभुके चरणोंमें सिर झुकानेकी स्वयं प्रेरणा होती थी और फिर वे अपने सब मत-भेद सम्बन्धी वैर-विरोधको भूल जाते थे। इस समय भी किसी किसी परम चारित्रशील महात्माके सम्बन्धमें ऐसी ही कुछ कुछ बातें सुनी जाती हैं। तब वीरप्रभु-सदृश महापुरुषोंके अद्भुत प्रभावके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या! समन्तभद्रके यहाँ जो विरोधियोंकी सभा भरी थी उसमें प्रभुके आते ही जो परिवर्तन हो गया वह एक बड़ा ही अद्भुत दृश्य है! इस बुद्धि-वादके युगमें Spiritual force आध्यात्मिक बलकी जैसी चाहिए वैसी मान्यता न रहनेके कारण ऐसी घटनाओंमें लोगोंको शंका होती है; परन्तु, उन्हें जानना चाहिए कि आध्यात्मिक बल एक ऐसा बल है कि उसके सामने सब बल निःसत्त्व हो जाते हैं। इस प्रभावका स्वरूप वे ही लोग देख सकते हैं जो ईश्वरत्त्वके स्वरूपको समझ चुके हैं। ऐसे अनुभवमें न आनेवाले विषयकी बुद्धि द्वारा शब्दोंमे व्याख्या करना व्यर्थ है। स्पिनोजा (Spinoza) नामके एक तत्त्ववेत्ताने बहुत ठीक कहा है:— ' To difine God is to deny him. अर्थात् ईश्वरकी व्याख्या करना मानों उसे अस्वीकार करना है। " सचमुच जब उसका स्वरूप ही बुद्धिकी कल्पनामें नहीं आ सकता तब उसका प्रभाव, जो स्वरूपसे उत्पन्न होता है, कैसे कल्पनामें आ सकता है! यह युग शरीर-बल,

और कुछ थोड़े विज्ञान-बल या बुद्धि-बलको समझने लगा है; परन्तु आध्यात्मिक-बलके समझनेके लिए इसे अब भी बहुत कुछ प्रगतिकी आवश्यकता है। आत्म-बलके सामने अन्य प्रकारके सब बल अपना अभिमान भूल जाते हैं; और इसी लिए शास्त्रकारोंने कहा है कि बड़े बड़े राजे-महाराजे और चक्रवर्ती भी आत्म-बलशाली महात्माओंके चरणोंको अपने मुकुटोंकी प्रभासे प्रदीप्त करते हैं। वीरप्रभु भी ऐसे ही उच्च श्रेणीके श्रेष्ठ महात्मा थे और इस कारण उनके दिव्य प्रभावका उपन्यासकी सीमामें रह कर जितना गान किया जाय थोड़ा है!

मणिभद्र ।

पहला परिच्छेद ।

प्रभुका आगमन ।

श्रावस्तीमें आज आनन्द व्याप्त हो रहा है । हजारों-लाखों गृहस्थोंके गृहों पर सुन्दर ध्वजायें, तोरण और फूलोंकी मालायें टाँगी जा रही हैं। धनदत्त सेठ स्वयं राजगृह जाकर महावीर भगवान्के दर्शन कर आये हैं—उनके चरण-कमलोंको देख आये हैं और स्वयं भगवान्का संसार-ताप नष्ट करनेवाला अमृतमय पवित्र उपदेश सुन आये हैं । इस कारण आज जो उनका आत्मा उस अपूर्व आनन्दके मारे उछल रहा है, वह युक्त ही है । जिसने निर्मल सशरीरी योगके—मूर्तिमान् संयमके दर्शन कभी स्वप्नमें भी नहीं किये हों और जिसके रूप-गुणका वर्णन पढ़ कर आज—ढाई हजार वर्ष बाद भी हम क्षण भरके लिए तन्मय हो जाते हैं उन भगवान्का साक्षात् दर्शन करके धनदत्त सेठको कितना अधिक आनन्द न होता होगा ! उसका वर्णन यह दरिद्र लेखनी कैसे कर सकती है ! जिन प्रभुकी पवित्र मूर्त्तिका चित्र खींचना शब्द या वाणीका काम

नहीं; और जिनके सुधा-सदृश उज्ज्वल उपदेशके असरको दिखलानेका प्रयत्न करनेवाले मनुष्यकी कल्पना-शक्ति उलटी पराजित हो जाती है उन प्रभुके दर्शनसे धनदत्त सेठ जैसे भक्तोंकी नस-नसमें—रोम-रोममें अपार आनन्द, शान्ति और सन्तोषका बतलाना ही उलटा उस आनन्दको कम करना है। हम तो क्षणिक परितृप्तिसे होनेवाले आनन्दके सिवा और दूसरे आनन्दकी कल्पना ही नहीं कर सकते। धनदत्त सेठका वह आनन्द क्षणिक न था—स्वार्थ-तृप्तिसे होनेवाले विकारको लिये हुए न था। हम तो इसके सम्बन्धमें केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह आनन्द अपूर्व और अलौकिक था।

धनदत्त सेठ श्रावस्तीके एक प्रसिद्ध श्रावक हैं। भारतके अनेक बड़े बड़े शहरोंमें उनकी दूकानें बड़े ज़ोर शोरसे चल रही हैं। इसके सिवा श्रावस्तीकी सारी प्रजा एक स्वरसे इस बातको स्वीकार करती है कि सारे पृथ्वी-मण्डल पर धनदत्त जैसा सच्चरित्र, उदार, दानी और धर्मात्मा पुरुष भाग्यसे ही कोई निकलेगा। धनदत्तने जो शासनाधिपति महावीर प्रभुके मुँहसे धर्म तथा आचरण-सम्बन्धी उपदेश सुना है उससे उनके संसार-ताप-तप्त हृदयमें एक नई ही भावनाका प्रबल उदय हो उठा है। उन्होंने स्थिर किया है कि "फिरसे प्रचार किये गये इस पवित्र जैनधर्मकी विजयपताका सारे संसारमें स्थायी रूपसे फहराना चाहिए। इसके लिए तन-मन-धनकी चाहे जितनी आहुति देनी पड़े उसे देनेके लिए मैं तैयार हूँ। यदि जैनधर्मकी उन्नति और प्रचारके लिए इस क्षुद्र जीवनका या धन-जन-यशका बलिदान करना पड़े तो उसे मैं आनन्दपूर्वक कर सकता हूँ! जिस तरह बन सके जैनधर्मकी प्रभावना करके उसे सारे संसारमें फैलाना और प्राणी मात्रको उसकी ठंडी छायाके नीचे आश्रय देना, अब यही एक मात्र मेरे शेष जीवनका महाव्रत है।" इस प्रकार धनदत्तने अपनी आत्म-साक्षीसे महान् प्रतिज्ञा की है। भगवान्के एक

क्षण भरके उपदेशसे धनदत्तका जीवन-क्रम ही पलट गया ! यहाँ हम यह निर्णय नहीं कर सकते कि इस जगह प्रभुके अद्भुत उपदेशके माहात्म्यका वर्णन करें या धनदत्तकी आत्म-शुद्धिका यशोगान करें।

सहृदय पाठकगण, अच्छा बतलाइए कि तुम्हें किसी प्रकारका सुख प्राप्त हो तो उसे अकेले भोगनेमें तुम अधिक आनन्द लाभ कर सकोगे या अपने मित्रों एवं कुटुम्बियोंके साथ भोगनेमें ? कल्पना करो कि तुम एक सुन्दर नाटक देखने गये, उस समय तुम्हें अकेले देखनेमें अधिक आनन्द मिलेगा, या अपने सदृश स्वभाववाले प्रेमियोंके साथ बात-चीत और हँसी-विनोदके सुखके अनुभवपूर्वक देखनेमें ? तुम्हें अपने घरके एक कोनेमें बैठ कर मिठाई खानेमें अधिक आनन्द जान पड़ेगा या अपने मित्रोंके मध्यमें बैठ कर सबके साथ प्रसन्नतापूर्वक खानेमें ? समझो कि तुम निर्मल चाँदनीवाली मधुर रात्रिमें एक सुन्दर बागमें घूम रहे हो, उस समय क्या तुम्हारी ऐसी इच्छा न होगी कि इस मधुर आनन्दमें भाग लेनेवाला हमारा कोई मित्र या प्रेमी यहाँ होता तो कितना अच्छा होता !

कौन जाने ऐसा क्यों होता है ? पर मनुष्य-स्वभाव ही ऐसा है कि वह आनन्दके बँटवारेमें कृपणता नहीं करता। धनदत्त सेठको महावीर प्रभुके दर्शनसे जो आनन्द हुआ था उससे उनके मनमें भी यही भावना हुई कि " इस अपूर्व आनन्दका अनुभव मैं अपने शहरके—अपनी जन्म-भूमिके—अन्य लोगोंको भी करा सकूँ तो कितना अच्छा हो ! " इस प्रकार मनमें विचार आते ही धनदत्तने बड़ी भक्तिके साथ महावीर प्रभुसे श्रावस्तीको पवित्र करनेकी प्रार्थना की थी। दयामय प्रभुने भी धनदत्तकी प्रार्थना स्वीकार कर अपने शिष्योंके साथ श्रावस्तीमें आनेकी स्वीकारता दे दी।

धनदत्त सेठ आज श्रावस्तीमें लौट आये हैं और वीरप्रभुके आगमन-सम्बन्धी समाचारोंको सारे शहरमें फैलानेका यत्न कर रहे हैं। वे स्वयं

जाकर अपने मित्रों, सगे-सम्बन्धियों और स्नेही जनोंको यह आनन्द समाचार दे आये हैं । जिस समय वे अपने ही सदृश स्वभाववाले सहृदय मित्रोंको ये समाचार सुनाते थे उस समय उनकी आँखें आनन्दाश्रुओंसे भर आती थीं !

प्रतिदिन प्रातःकाल लाखों मनुष्य जिनके पवित्र नामका स्मरण कर अपने जीवनको कृतार्थ समझते हैं, यज्ञोंमें होमे जानेवाले बे-जबान गूँगे प्राणी जिनकी दया प्राप्त कर आज नीरव भाषामें जिनके उपकारका कीर्त्तन कर रहे हैं, आज मैं उन महावीर परमात्माके साक्षात् दर्शन करूँगा, उनका अमृतमय पवित्र उपदेश सुनूँगा, और विश्वव्यापी मैत्री-भावकी भावनासे जगत्को अपने आत्माके साथ एक कर दूँगा; ऐसी ऐसी अनेक भावनायें धनदत्त सेठ और उनके बन्धु-बान्धवोंके हृदयोंमें उठने लगीं । किस रास्ते पर तोरण बाँधे जायँ, किस रास्तेसे प्रभु शहरमें प्रवेश करेंगे और किस जगह खड़े रहने पर प्रभुको सब लोक निर्निमेध दृष्टिसे देख सकेंगे; इत्यादि नाना तरहकी व्यवस्थाओंके करनेमें धनदत्त और उनके मित्रगण रातदिन परिश्रम करने लगे। प्रभुके सत्कारकी तैयारीमें उन सबने अपना घर-धन्दा और वणिज-व्यापार आदि सब काम एक ओर रख दिये ।

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि,' इस नीतिका यह अर्थ है कि अच्छे कामोंमें अनेक विघ्न आते हैं । इस पर कुछ विद्वानोंका कहना है कि यही नहीं; किन्तु जिस कार्यमें विघ्नोंका सामना करना पड़े उन्हीं कार्योंको श्रेष्ठ समझना चाहिए। जिस समय श्रावस्तीके ब्राह्मण-समाजने यह समाचार सुना कि धनदत्त सेठने अपनी जन्मभूमि श्रावस्तीमें आनेके लिए महावीर स्वामीको आमंत्रण दिया है तो उस समय उसमें एक बड़ी भारी खलबली मच गई । यह बात सिद्ध है कि जितना महान् कार्य होता है विघ्न भी उसके सामने उसीकी तुलनाके आकर खड़े रहते हैं । यह बात हम महा-

वीरप्रभुके जीवन-चरित्रमें, स्पष्ट रूपसे देखते हैं कि वीर प्रभुका उपदेश और शासन जितना प्रबल था विरोध भी उसके सामने उतना ही प्रबल हुआ।

जिस समयकी हम यह बात लिख रहे हैं उस समय श्रावस्तीमें समन्ताभद्र नामका एक और सेठ रहता था। वह बड़ा धनवान् था। भारतके अनेक छोटे मोटे शहरोंमें उसके आढ़तिये और आश्रित जन निवास करते थे। समन्तभद्रके पास जितना अपार धन था उसकी शक्तिका भी समाजमें उतना ही आदर था। वह बहुत वृद्ध था। वैदिक क्रिया-काण्डमें उसकी बड़ी श्रद्धा थी। प्रतिदिन सैकड़ों ही ब्राह्मण विद्वान् उसके यहाँ आते और धर्मके बहाने अपना स्वार्थ साध कर चले जाते थे। थोड़ेमें यह कहना चाहिए कि समन्तभद्र पंडितोंके लिए एक बड़ा भारी आधार था।

समन्तभद्रने अब तक अनेक यज्ञ किये हैं और उनमें अनेक जीवोंका बलिदान दिया है। समन्तभद्रकी जिस अभागे पुरोहित पर कृपा न होती उसकी फिर समाजमें भी कोई पूछ-ताछ न करता था। समन्तभद्रके तीन पुत्र थे। उनमें एकका नाम रत्नभद्र दूसरेका सुभद्र और तीसरेका मणिभद्र था।

श्रावस्तीके ब्राह्मणोंमें महावीर प्रभुके आगमन-समाचारसे बड़ी खलबली मच गई और वे उनके विषयमें नाना तरहकी अफवाहें उड़ाने लगे। वे कहने लगे कि महावीर श्रावस्तीमें आकर वेद-विरुद्ध धर्मका प्रचार करेंगे; वेद-विहित क्रिया-कर्मोंको उठा देंगे; और इससे ब्राह्मणोंकी सत्ता सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। यह सब देख-सुन कर वेदानुयायी—हिंसाप्रिय—ब्राह्मण-भक्त समन्तभद्रका पित्त भड़क उठा।

उस उमय समन्तभद्रने समाजके प्रधान प्रधान ब्राह्मणों और प्रतिष्ठित पुरोहितोंको एकत्रित कर अपने घर पर एक सभा की। ब्राह्मण लोग बहुत समयसे वीर प्रभुकी प्रशंसा सुन रहे थे। उन्होंने सुन रक्खा

था कि अनेक ब्राह्मण भी जिनके जैनधर्मको स्वीकार करने लगे हैं, वे ही वीर प्रभु आज श्रावस्तीमें—अपने शहरमें—आकर एक नया ही धर्म-प्रचार करनेवाले हैं। इस समाचारको सुनते ही वे लोग खूब उत्तेजित हो उठे। इस सभामें कई अच्छे अच्छे गृहस्थ और पंडित-गण भी उपस्थित थे। उनके द्वेष-पूर्ण बड़े ही जोशीले व्याख्यान हुए। व्याख्यानोंका सभाके लोगों पर खासा असर पड़ा। सबने मिल कर उस समय प्रतिज्ञा की कि "हम लोगोंमेंसे किसीको महावीरके आगमनोत्सवमें भाग न लेना चाहिए और ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिए कि उनके शब्दों तकको कोई न सुन सके। ब्राह्मण-समाजके सगे-सम्बन्धियोंमेंसे कोई भी महावीरके पास जाय या उनका उपदेश सुने तो वह जाति-च्युत किया जाय और उसके साथ हमें फिर किसी प्रकारका व्यवहार-सम्बन्ध न रखना चाहिए।" इसके साथ ही सभामें यह भी जाहिर किया गया कि जो इस प्रस्तावको न मानेगा उसे उचित दंड दिया जायगा।

समय पर इस सभाका हाल धनदत्तके पास भी पहुँच गया। पहले तो उनने इस ओर ध्यान देना ही उचित न समझा; पर जब उन्हें जान पड़ा कि शहरके अनेक मुखियां और विद्वान् लोग भी समन्तभद्रके पक्षमें मिले जा रहे हैं तब उनके हृदयमें भी चिन्ताकी चिनगारी प्रज्वालित हुई। उसके प्रकाशमें उन्हें दिखाई पड़ने लगा कि उनके पक्षके लोगोंकी संख्या केवल मुट्ठीभर है और विरोधी लोगोंका दल दिनदिन प्रबल होता जाता है। अपनी परिस्थितिको देख कर उनका निराश और उत्साह-हीन हृदय भर आया। उन्होंने सोचा कि "ऐसे प्रबल विरोध और ईर्ष्याके समय जगत्प्रभु वीर जिनको आमंत्रण देना उचित नहीं है। कारण स्वयं भगवान् यहाँ पधारें और उनका उचित सत्कार न हो तो कितना लज्जा-जनक है? यही नहीं; किन्तु विरोधी लोग प्रभु पर आक्रमण करेंगे तो मैं उनका बचाव किस तरह कर सकूँगा। ब्राह्मणोंका जोर यहाँ पर बहुत बढ़ा

हुआ है। ऐसी बुरी परिस्थितिमें मैंने जो भगवान्‌से श्रावस्तीमें आनेकी प्रार्थना की वह उचित नहीं किया। अब केवल एक उपाय है; और वह यह कि मैं एक प्रार्थना-पत्र लिख कर प्रभुसे यहाँ न आनेकी प्रार्थना करूँ। करुणासागर प्रभु मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कर लेंगे।" इस विचारके साथ ही धनदत्तने पत्र लिखना आरंभ किया। उनके हृदयमें तो प्रबल रूपसे प्रभुके बुलानेकी इच्छा थी; परन्तु शत्रुओंके केवल डरसे उन्हें इस पत्रके लिखनेके लिए मजबूर होना पड़ा था। पत्र लिखते लिखते उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धार बह चली। हाथ काँपने लगे। हृदय धड़कने लगा। बड़ी कठिनतासे उन्होंने वह पत्र पूरा कर पाया। इसके बाद अपने एक विश्वास-पात्र नौकरको बुला कर उन्होंने उससे उस पत्रको महावीर प्रभुके पास पहुँचा देनेको कहा। प्रभुके उस समयके पूर्ण आत्म-ज्ञानकी ओर दृष्टि देनेसे इस पत्रके लिखनेकी कुछ जरूरत न थी; कारण प्रभु तो त्रिलोककी वस्तुओं और उनकी परिस्थितिको अपने ज्ञान-नेत्रसे यों ही देख रहे थे। एक कागजका टुकड़ा उनके ज्ञानमें क्या कोई नई वृद्धि कर सकता था?

पत्र लेजानेवाला जिस समय राजगृहमें पहुँचा उस समय वीर प्रभु अपने शिष्योंके साथ श्रावस्तीकी ओर विहार करनेके लिए तैयार हो रहे थे। उसने पहुँच कर बड़े विनयके साथ प्रभुको प्रणाम किया और वह पत्र उनके चरणों पर रख दिया। उस समय उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। प्रसन्न-मूर्ति भगवान्‌ने उस पत्र लानेवालेको खड़े होनेके लिए कह कर अपने एक शिष्यसे पत्रके पढ़नेका इशारा किया। उस पत्रमें लिखा हुआ था कि—

"त्रि-ताप-संतप्त जगत्‌का उद्धार करनेवाले, परम दयालु श्रीवीर प्रभुके पवित्र चरणोंमें भक्तिपूर्वक अनन्त वन्दनायें प्रविष्ट हों।

प्रभो, श्रावस्तीके अधिकांश लोगोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई जान पड़ती है। वे आपके दिव्य स्वरूपको नहीं समझ सकते । मैं बड़ा ही मन्द-भाग्य हूँ, जो मुझे यह लिखना पड़ता है कि आप श्रावस्तीमें आनेकी कृपा न करें। कारण विरोधियोंका दल दिनदिन प्रचंडता धारण कर रहा है । बन सकेगा तो एकवार मैं ही राजगृहमें आकर आपके पवित्र चरणोंका स्पर्श कर आऊँगा ।

हतभाग्य—

धनदत्त । ”

पत्र पढ़ चुकनेके बाद शिष्यने भगवानके मुँहकी ओर देखा । सारी शिष्य-मण्डली चित्रकी भाँति स्तब्ध हो गई । भगवान् इसका क्या उत्तर देते हैं इसके सुननेकी वह बड़ी उत्सुकताके साथ राह देखने लगी। भगवानने एक क्षणके लिए उपयोग लगा कर भावी स्थितिका निरीक्षण किया। उस समय भगवान्के गंभीर और शान्त मुँह पर कृष्ण चतुर्दशीके अन्तिम प्रहरमें, आकाशमें प्रकाशित होनेवाली चन्द्र-कलाकी भाँति स्वभाव-मधुर और उज्ज्वल हँसीकी रेखा दिखाई दी । प्रभुने अपने शिष्योंकी ओर दृष्टि करके कहा—

“ आश्चर्य है, कि मनुष्य स्वयं अपने हितको नहीं देख सकते । इस कारण चाहे जैसी वस्तुस्थिति हो, चाहे जैसे उलटे संयोग मिले हों, तो भी मैं श्रावस्तीमें अवश्य जाऊँगा और प्रत्येक गृहस्थके घरके दरवाजे पर खड़ा रह कर पवित्र धर्मके मंगल समाचार सबको सुनाऊँगा। मुनिजनो, आजसे श्रावस्ती पवित्र धर्मकी एक मुख्य लीलाभूमि बनेगी । ”

शिष्योंने भक्तिभरे हृदयसे सिर झुका कर प्रभुको नमस्कार किया और वे सब प्रभुके साथ चलनेको तैयार हो गये । प्रभुने भी उसी समय श्रावस्तीकी ओर प्रयाण कर दिया ।

दूसरा परिच्छेद।

दानव-कुलमें देव।
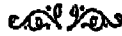
वीरप्रभुके पास जो मनुष्य पत्र ले गया था उसने वापिस राजगृह आकर वह सब हाल धनदत्तसे कह सुनाया। पत्र पढ़ चुकनेके बाद प्रभुने किस गंभीरतासे विचार किया था और उस समय उनकी मुद्रा कैसी शान्त थी; तथा थोड़ी ही देर बाद प्रभुने किस दृढ़ताके साथ उत्तर दिया था; इत्यादि अथसे इतिपर्यन्त सब बातें उसने धनदत्त सेठको सुनादीं। यह बात पाठकों पर विदित है कि धनदत्तने केवल बाह्य संयोगोंकी भयंकरताको देख कर ही भगवनासे न आनेकी प्रार्थना की थी; पर उसके हृदयमें तो यही प्रबल भावना थी कि प्रभु श्रावस्तीको पवित्र करें। बाह्य प्रार्थना अस्वीकार होनेके साथ अपने हृदयकी प्रार्थना स्वीकार हो जानेसे धनदत्तको उस समय कितना आनन्द हुआ होगा उसका अनुमान हम लोग नहीं कर सकते। धनदत्तने यह जान कर, कि प्रभु अवश्य पधारेंगे, बड़ी धूम-धामके साथ प्रभुके स्वागतकी तैयारी करना आरंभ कर दिया।

धनदत्त बड़े पवित्र-हृदय और सच्चे भक्त थे; पर यह बात भी भूल जानेकी नहीं है कि थे वे मनुष्य। प्रभुके इस प्रकार दृढ़तापूर्ण उत्तर दे चुकनेके बाद भी जब वे देखते थे कि श्रावस्तीके ब्राह्मणोंका—विरोधियोंका—बल दिनदिन बढ़ता जा रहा है, उनकी प्रतिकूलता अधिक अधिक गंभीर होती जा रही है तब बहुत ही निराश हो जाते थे। मनुष्योंकी दृढ़ताकी सीमा होती ही कितनी है? वे चाहे जितना बल दिखानेका प्रयत्न करें; परन्तु विरोधियोंकी बढ़ती हुई संख्या और उपद्रवोंकी निरंतर होनेवाली वर्षाको देख कर उस समय हृदयको बलवान् बनाये रखना कोई साधा-

रण बात नहीं है। जो लोग ऐसे संयोगोंमें भी बड़ी दृढ़ता और निर्भय-ताके साथ छाती ठोक कर खड़े रहते हैं उन्हें मनुष्य नहीं किन्तु देव कहना चाहिए। धनदत्त अपनी शक्तिभर प्रयत्न करते, पर जब वे कभी कभी घबरा जाते तब सिर पर हाथ रख कर भावी स्थितिके सम्बन्धमें विचार-मग्न हो जाते थे। उस समय उनके अन्तःकरणके भीतरसे मानों कोई कहता था कि "धनदत्त, निर्बल बनना उचित नहीं है। यह निर्बलता अश्रद्धासे ही उत्पन्न होती है। क्या तुम्हें प्रभुके वचनों पर श्रद्धा नहीं है? जब स्वयं प्रभुने ही आनेकी घोषणा की है फिर तुम क्यों घबराते हो? प्रभुके आते ही ये सब असुविधायें—प्रतिकूलतायें क्षणभरमें नष्ट हो जायँगी।"

इन उत्साह भरे शब्दों पर विश्वास लाकर धनदत्त फिर नये बल और नये उत्साहके साथ काम करने लग जाते और ब्राह्मण-समाज तथा समन्तभद्रकी शत्रुताको थोड़ी देरके लिए सर्वथा भूल जाते। धनदत्तने भगवानके सत्कारार्थ अनन्त धन-भण्डार खर्च करना प्रारंभ कर दिया। रास्ते रास्ते पर और गलियों गलियोंमें नये, सुन्दर और बहुमूल्य नाना तरहकी वस्तुओंसे बनाये हुए तोरण बँधवा दिये। लोग दोनों बाजुओंसे प्रभुके दर्शन कर सकें, इसके लिए जगह जगह पर बड़ी बड़ी ग्यालिरियोंकी व्यवस्था करवा दी।

प्रभुके आनेका दिन अब समीप है। यह निश्चित हो चुका है कि कल पूर्णिमाको अपने शिष्योंके साथ वीर प्रभु शहरमें प्रवेश करेंगे। आज शामको वे श्रावस्तीसे एक मीलकी दूरी पर जो पुराना आम्रवन है उसमें ठहरेंगे। यह समाचार सारी श्रावस्तीमें फैल चुका है। धनदत्त सेठ प्रभुके स्वागतका सब भार अपने स्नेहियों और विश्वास-पात्र सेवकों पर छोड़ कर आप स्वयं अपने स्त्री-पुत्र वगैरहके साथ प्रभुके दर्शनार्थ उक्त वनकी ओर रवाना हुए।

इस प्रकार एक ओर तो आनन्द, उल्लास और उत्साहका प्रबल प्रवाह बह रहा था और दूसरी ओर समन्तभद्रके यहाँ ठीक इससे उलटे चिन्ता, शोक और निराशाके अन्धकारमय बादल मडरा रहे थे। इसे मनुष्य-जातिका बड़ा ही दुर्दैव कहना चाहिए जो दुनिया अपने जमानेके महा-पुरुषोंको नहीं पहचान सकती। समन्तभद्रके यहाँ उस समय एकके बाद एक ब्राह्मण-मण्डली आ-आकर जमा होने लगी। घंटों तक उसकी प्राईवेट सलाह होती रही। उस समय समन्तभद्रके मुँह पर उद्वेगकी कालिमामय छाया स्पष्ट दिखाई दे रही थी। समन्तभद्रने सोचा कि यह सब प्रयत्न और षड्यंत्र किस लिए? इसका परिणाम क्या होगा? अपने स्वार्थ और अभिमानकी रक्षाके सिवा और तो कोई मेरा उद्देश्य नहीं है। फिर परिणाम चाहे जो कुछ हो, पर आज तक जिस मार्ग पर मैं चला आ रहा हूँ उसे मैं कभी नहीं छोड़ सकता। जान पड़ा उस समय उसके हृदयकी गहराईके भीतरसे कोई कह रहा था कि समन्तभद्र, यह तू अच्छा नहीं कर रहा है। जगत्के दुःखोंका नाश करनेके लिए जिस राजपुत्रने राज्य-वैभवको तिलांजलि देकर इस प्रकार कष्ट-साधना स्वीकार की है उसके मार्गमें कंटकरूप होना तुझे उचित नहीं है। अस्तु, कोई हानि नहीं, तेरा यह प्रबल विरोध ही उन्हें उनके पवित्र मार्गमें—शासन-प्रचारमें खूब सहायता देगा। इस प्रकार समन्तभद्रका सारा दिन तरह तरहके प्रयत्नोंमें और उद्वेगोंमें बीत गया।

रातको कोई आठ–साढ़े आठ बजे समन्तभद्र अपनी बैठकमें अकेला बैठा हुआ विचारमें मग्न हो रहा था। उस समय एक ब्राह्मणने उसकी बैठकमें प्रवेश किया। देखनेसे उसका चेहरा घबराया हुआ और चिन्तायुक्त जान पड़ता था। वह इस बातको स्थिर न कर सका कि जो समाचार वह लाया है वे किस ढँगसे समन्तभद्रके सामने प्रगट किये जायँ। पर आखिर उससे न रहा गया और वह बोल उठा कि “ सेठ

साहब, यदि अपराध जान पड़े तो क्षमा कीजिएगा; पर कहे बिना नहीं रहा जाता । सच बात तो यह है कि आप ही हमारा नाश करनेके लिए तैयार हुए हैं । हमें विश्वस्त पुरुषों द्वारा समाचार मिले हैं कि आपका छोटा लड़का मणिभद्र श्रावस्तीकी प्रजाका प्रतिनिधि बन कर धनदत्त सेठके साथ आम्रवनमें महावीरको आमंत्रण दे आया है । " इस समाचारके सुनते ही समन्तभद्रके सिर पर मानों वज्र गिर पड़ा । वह थोड़ी देरके लिए दिङ्मूढ़सा बन गया । उधर ब्राह्मण महाराज अपना काम पूरा करके चलते बने ।

समन्तभद्रके ऊपर अनचीती विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा । वह सोचने लगा कि–" मेरी पक्षके लोग यह हाल सुन कर मुझे क्या कहेंगे, कि मेरा ही छोटा लड़का मणिभद्र महावीरको श्रावस्तीकी प्रजाकी ओरसे आमंत्रण दे आया है ! उनकी दृष्टिसे मैं कितना विश्वास-घातक और तिरस्कारका पात्र गिना जाऊँगा ! मेरे लड़केको ऐसी दुर्बुद्धि कहाँसे उत्पन्न हो गई ! जिस वैदिक-धर्मकी रक्षाके लिए मैं इतनी चिन्ता किया करता हूँ, जिसके लिए मुझे अपने अन्तःकरणकी ध्वनिको भी दबा देना पड़ा है, उसके पुरस्कर्ता शक्तिशाली–अग्नि-सदृश ब्राह्मण-समाज मेरा कैसा अपमान करेगा ? " मणिभद्र देवपुत्र था; समन्तभद्र इस बातको कैसे समझ सकता है कि दानव-कुलमें भी देव पैदा हो सकता है। जिस भाँति प्रह्लादने दानव-कुलमें पैदा होकर भी उसे ऐतिहासिक अमरत्व दे दिया उसी भाँति मणिभद्र भी यदि अपने पिताके कुलको उज्ज्वल करे तो इसमें आश्चर्यकी बात क्या है ? .

समन्तभद्रकी घबराहटको देख कर उसके बड़े दो पुत्र भी वहीं आ गये । धीरे धीरे यह सब समाचार सारे घरमें फैल गया । कोई मणिभद्रको गालियाँ देने लगा, और किसीने उसे घरसे निकाल देनेकी सलाह दी । इस प्रकार मणिभद्रके लिए दंड-विधानकी बातें सुन-

कर समन्तभद्रने गंभीरताके साथ कहा—" इस समय तो यह उचित जान पड़ता है कि मणिभद्र सबके ऊपरकी मंजिलवाली कोठड़ीमें बन्द कर दिया जाय और हम लोग ब्राह्मण विद्वानोंके समीप चल कर क्षमाकी प्रार्थना करें। " समन्तभद्रके कहे अनुसार मणिभद्र एक अँधेरी कोठड़ीमें बन्द कर दिया गया और समन्तभद्र अपने दोनों पुत्रोंको साथ लेकर ब्राह्मणोंके घर गया। उसने उस समय एक साधारणसे साधारण ब्राह्मणके घर-पर जाकर अत्यन्त गिड़गिड़ाते हुए प्रार्थना की कि—" ब्रह्मदेव, इस एक अपराधके लिए मुझे क्षमा कीजिए। मणिभद्रको मैं उसके अपराधका योग्य दंड अवश्य दूँगा। आप उसके लिए कोई प्रायश्चित्तकी व्यवस्था करेंगे तो उसे भी मैं सादर स्वीकार करूँगा। पर जिस तरह बन सके आप लोगोंको मेरे कुलका यह अपराध क्षमा करना चाहिए। मेरी आपसे यह बार बार प्रार्थना है। इस समय तो मैंने मणिभद्रको एक कोठड़ीमें कैद कर रक्खा है। इसके सिवा मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आगे वह ऐसा अपराध कभी न करेगा। सब ब्राह्मण विद्वानोंने समन्तभद्रकी यह प्रार्थना स्वीकार की। उस दिन बड़ी रातको समन्तभद्र अपने घर पर लौटा। समन्तभद्रको इस बातसे बड़ा सन्तोष हुआ कि ब्राह्मण-विद्वानोंने उदारताके साथ उसका अपराध क्षमा कर दिया। उसके दोनों लड़के भी घर लौट आये। बड़ी रात तक इन लोगोंको परिश्रम उठाना पड़ा, इस कारण घर आते ही ये सब शान्त निद्राकी गोदमें जा सोये। रात्रिकी निस्तब्धता धीरे धीरे गंभीर होती गई। सवेरा होनेमें अभी कोई चार पाँच घंटेकी देरी है। जिस भाँति समुद्र तूफान उठनेके बाद शान्त पड़ जाता है उसी भाँति समन्तभद्रका विशाल गृह—विशाल अन्तःपुर भी रात्रिके पिछले प्रहरमें निद्राका सुमधुर आलिङ्गन कर शान्त निस्तब्ध हो गया है। मनुष्योंकी कण्ठध्वनि अब सुनाई नहीं पड़ती।

तीसरा परिच्छेद।

मणिभद्रका छुटकारा।

चलिए पाठक, एकवार हम लोग मणिभद्रकी भी खबर ले आवें।

वह सात मँजले मकानकी अंतिम मंजिल पर एक अँधेरी कोठरीमें बंद है। इस बातका उसे स्वयं भी पता नहीं है कि मैं किस कारण बन्द किया गया हूँ। उसने ऐसा कौनसा भयंकर अपराध किया जिसके लिए उसे ऐसा दंड दिया गया। इस पर उसने बहुत विचार किया, पर वह इसके कारणको किसी तरह स्थिर न कर सका। वह विषाद और चिन्तासे छुटकारा पानेके लिए आँखें बन्द करके नींद लेनेका यत्न करता है पर पलक लगते न लगते एकदम चौंक उठता है। वह अपने हृदयसे वार वार पूछता है, अपनी प्रत्येक बीती हुई बातको याद कर उसमें अपने अपराधको देखनेकी चेष्टा करता है; परन्तु किस गुरुतर अपराधके कारण उसे यह विषम संकट सहना पड़ा है उसे वह किसी तरह नहीं समझ सकता।

मणिभद्रकी प्रेममयी माताका स्वर्गवास हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। मणिभद्र अपनी माताका सबसे अधिक प्यारा पुत्र था। वह बीस वर्षका हो चुकने पर भी माताकी गोदमें सिर रक्खे बिना नहीं सोया। माताकी स्नेहपूर्ण स्मृतिको वह भूला नहीं है। माताके वियोगके कारण वह सारे दिन शोकाकुल रहा करता। उसके लिए ऐसी कोई जगह न थी कि जहाँ जाकर वह क्षण भरके लिए शान्ति लाभ करता या उसे किसी प्रकारका आश्वासन मिलता। माताका वियोग हो जानेसे उसे सारा संसार

सूनासा जान पड़ता था। केतकीका कोमल फूल साधारण आतापसे जिस भाँति मुरझा जाता है, उसी भाँति मणिभद्रका स्नेह-पुष्ट हृदय माताके वियोग-तापसे मुरझा गया था। उसके चेहरे पर सदा विषादकी गंभीर रेखा दिखाई पड़ती थी। संसार-सम्बन्धी किसी भी काम-काजमें उसका ध्यान न था। एकान्त जंगल, घर या बागमें जाकर जीवनके कठिन प्रश्नोंके हल करनेके सिवा और कोई विचार उसके मगजमें स्थान न पाते थे। उसे इस बातकी बिल्कुल खबर न थी कि कल प्रातःकाल ही जगत्-प्रभु महावीर भगवान् उसकी जन्मभूमि श्रावस्तीमें आनेवाले हैं और इसीके लिए शहरमें दो बड़े बड़े पक्ष पड़ गये हैं। वह तो बेचारा मातृ-वियोगसे सदा अन्यमनस्क ही रहा करता था। आज शामको न जाने किस कारणसे उसका चित्त एकदम व्याकुल हो उठा। घरमें चैन न पड़नेके कारण वह बाहर निकला। घरमें किसीसे कुछ न कह सुन कर वह, जिधर उसे उसके पाँव ले गये उसी ओर चल दिया। वह कहाँ जा रहा है, इसका उसे स्वयं भी भान न था। एक यंत्रकी तरह पाँव उठाता हुआ वह अनायास पुराने आम्रवनमें आ पहुँचा। उस समय धनदत्त सेठ भी वहीं पर थे। दोनोंने परस्परको पहचाना। उस समय किसीके चित्तमें लेश मात्र भी द्वेष या वैमनस्य न था। धनदत्तके कहनेसे मणिभद्र वहाँ पर विराजे हुए नये महात्माके दर्शनके लिए आगे बढ़ा।

वीर प्रभु उस समय एक बड़े भारी बड़के झाड़के नीचे मुनियोंके मध्य शान्तभावसे बैठे हुए थे। मणिभद्रनें प्रभुके चरणों पर सिर रख कर बड़ी भक्तिसे प्रणाम किया। प्रभु उस समय शिष्य-मण्डलकी शंकाओंका समाधान कर रहे थे। प्रभुकी सुधा-सदृश वाणी सुन कर मणिभद्रका आत्मा एक नये ही प्रकारके शान्ति-रससे द्रवीभूत होने लगा। प्रभुके मुख-चन्द्रसे जो अमृततुल्य उपदेशकी धारा बह रही थी उसका पान करनेके लिए मणिभद्रकी इच्छा उत्तरोत्तर अधिक अधिक बढ़ती गई। इस

कारण मणिभद्र बड़ी देर तक वहीं बैठा रहा। इसके बाद जब उसने देखा कि अब रात हुई जाती है तब वह अपने गृहकी ओर वापिस लौटा।

घर आकर वह विचारने लगा कि मैंने जो वीर प्रभुके दर्शन किये और उनका उपदेश सुना, सो इसे क्या पिताजी भयंकर अपराध समझेंगे? नहीं नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। वीर प्रभुकी पवित्र मूर्तिके दर्शन करके तो वे उलटा अपनेको भाग्यशाली समझने लगेंगे। तब नहीं जान पड़ता कि मैंने और कौनसा अपराध किया है? इस प्रकार विचार करने पर भी जब वह कुछ स्थिर नहीं कर पाता तब खुले हृदय रोनेका यत्न करता था; पर इसके बाद ही वह अपनी स्थितिको समझ कर सोचता कि जो इस समय मैं रोने लगूँगा तो पिता तथा भाई-बन्धु दयाके बदले उलटे मुझ पर क्रोधित होंगे। यह विचार कर वह हृदयके भारको हृदयमें ही दबानेका यत्न करने लगता था।

रात्रि प्रायः समाप्त होने पर है। शुक्लपक्षकी चतुर्दशीका चन्द्रमा पश्चिम आकाशकी ओर ढलता हुआ जा रहा है। शीतल-मन्द हवाके झकोरोंके साथ पपैयाकी मधुर आवाज भी दूर तक पहुँच रही है। मणिभद्र इस समय एक खिड़कीमेंसे अस्त होते हुए चन्द्रमाकी ओर देख रहा है। पपैयाकी मधुर आवाज या हवाकी मृदु लहरें उसके ध्यानको न तोड़ सकीं। विचार-सागरमें वह इतना मग्न हो गया कि उसे इस बातकी भी खबर नहीं रही कि वह स्वयं कहाँ कैसी अवस्थामें है। वह इस समय किसी गंभीर विचारमें अवश्य है; परन्तु इतना भारी विचार वह किस विषयमें कर रहा होगा? यह सही है कि वह उस समय भूख-प्याससे बड़ा कष्ट पा रहा है, तो क्या वह इसी विषयके विचारोंमें मग्न है? नहीं। वह विचार करता है कि ये लोग इस तरह मुझे कब तक बन्द रक्खेंगे। प्यासके मारे मेरा गला सूखा जा रहा है, क्या ये लोग मुझे एक बूँद पानी भी न देंगे? अस्तु, पानीकी बूँद न दें तो न सहीं; पर क्या ये

मुझे योगिराजकी उस विश्वमोहिनी मूर्तिके दर्शन करनेके लिए भी न जाने देंगे ? प्यासे रह कर मर जानेकी मुझे चिन्ता नहीं; किन्तु एकवार प्रभुके दर्शन फिर भी कर लिये होते तो यह मौत मेरे लिए महान उत्सवरूप हो जाती! कोई कैसा ही भयंकर पापी क्यों न हो, उसे प्रभुके दर्शनसे जुदा रखना इसके समान और कोई दूसरी क्रूरता नहीं हो सकती। अहा, जबसे मैंने महाप्रभुकी वाणी सुनी है तबसे मैं हृदयमें शान्ति और आशा-रूपी मन्दवाहिनी नादियोंकी सुमधुर कलकल-ध्वनि निरंतर सुन रहा हूँ। इस स्वर्गीय ध्वनिके पास संसारके कोलाहलकी पहुँच नहीं। वे ही वीरप्रभु कल—नहीं दो-तीन घंटे बाद ही इस नगरीमें पधारेंगे। सैकड़ों स्त्री-पुरुषोंके झुण्ड उनकी चरणोंकी धूल अपने सिर पर चढ़ा कर अपना नर-जन्म सफल करेंगे। और हाय! उस उसय मैं ही एक ऐसा मन्दभाग्य बच रहूँगा जो मुझे ऐसा करनेकी आज्ञा न दी जायगी। हाय! किस भवके ये अशुभ कर्म मेरे उदय आये होंगे! मैंने ऐसा कौनसा घोर पाप किया है कि जिससे मेरे लिए प्रभुके दर्शनमें विघ्न आया! जब प्रभु मृदु मधुर स्वर्गीय हँसीकी ज्योतिको चारों ओर फैलाते हुए शहरमें प्रवेश करेंगे, मधुर-गंभीर ध्वनिसे प्राणोंकी सोती हुई आशाको जागृत करेंगे और इस क्षुद्र जन-समाजके सामने सुधा-सदृश शान्तिकी वर्षा करेंगे उस समय मैं ही ऐसा पापी बच रहूँगा जो वहाँ नहीं पहुँच सकूँगा। न जाने किस अपराधकी मुझे यह ऐसी भयंकर और सख्त सजा दी गई है! हाय! प्रभुका वह सरल और पवित्र व्यवहार, प्रभुकी वह मेघ-सदृश गंभीर वाणी, प्रभुकी वह अलौकिक गंभीरता और उदारता मुझे फिर भी कभी देखनेको मिलेगी—मैं फिर भी उनके दर्शन कर भाग्यवान् बन सकूँगा! मणिभद्र एक ओर तो इस प्रकारके विचारोंमें डूबा रहता था, दूसरी ओर भूख-प्यासका कष्ट सहता था; और साथ ही प्रभुके ध्यानमें लीन रहता था। इस प्रकार दिनभरके क्लेश और शोकसे थक कर अन्तमें वह निद्राके वश हो गया। निद्राके वेगले

क्षण भरके लिए उसे अपने अधीन कर लिया। माणिभद्र इस समय भी स्वप्न-सृष्टिमें नाना तरहकी कल्पनामें कर रहा था।

इतनेमें मणिभद्रके कानोंमें अकस्मात् एक ऐसा शब्द पड़ा कि जिस कोठड़ीमें वह बन्द है उसका ताला खोलनेके लिए कोई प्रयत्न कर रहा है। वह एकदम चौंक कर मंत्र-मुग्धकी भाँति उठ बैठा। वह दरवाजेकी ओर दृष्टि डाल कर देखता है, कि इतनेमें कोठड़ीके किवाड़ खुल गये और दरवाजेमें एक स्वर्गीय सुन्दरी आकर खड़ी हो गई। वह आश्चर्य-चकित दृष्टिसे टकटकी लगाये उसकी ओर देखता ही रह गया।

वह सुन्दरी कौन है, इसके कहनेका साहस हम नहीं कर सकते। मणिभद्रको इस सुन्दरीके दर्शन करके ऐसा जान पड़ा कि अस्ताचलोन्मुख चन्द्रमाकी जो निर्मल चाँदनी बन्द दरवाजे पर पड़ रही थी वही अब स्त्री-शरीर धारण कर मेरे सामने आ खड़ी हुई है। वह सुन्दरी बालिका थी या युवती, इसका भी निश्चय करना उस समय कठिन था। कारण उसकी बिखरी हुई, काली निविड़ केशराशिमें उसका चाँदसा सुन्दर मुख-स्पष्ट रूपसे दिखाई न पड़ रहा था। वह एक सफेद साड़ी पहने हुए थी। उसके गलेमें मोतियोंका सुन्दर हार शोभा दे रहा था। मणिभद्र उसे ध्यान-पूर्वक देख कर पहचाननेका यत्न करता है कि इतनेमें वह स्वयं ही उसके पास आकर खड़ी हो गई और मणिभद्रके हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर स्निग्ध दृष्टिसे उसकी ओर देखती हुई धीरेसे बोली—"चुप रहिए, यह बोलनेका समय नहीं है। तुम मुझे पहचान नहीं सकते। और न इस समय पहचाननेकी जरूरत ही है। इस समय ज्यादा देर तक बात-चीत करनेका यत्न करोगे तो हम दोनों ही पकड़े जाएँगे। माणिभद्र, सच तो कहो, क्या तुम वीर भगवानके दर्शन करनेके लिए जाना चाहते हो?"

आनन्द, आश्चर्य और उत्सुकताके कारण मणिभद्रके मुँहसे एक शब्द भी न निकला। उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि उसके प्राणोंमें–हृदयमें–गहरे अन्तरङ्गमें मानों बड़े जोरसे बिजलीका प्रबल वेग दौड़ रहा है। वह उत्तर देनेके बदले उठ कर खड़ा हो गया। सुन्दरीने पहलेकी भाँति उसके हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर बड़ी सावधानीके साथ धीरेसे कहा कि मणिभद्र, जाओ, जितना जल्दी बन सके भागनेका यत्न करो। तुम्हारे पिताकी बुद्धि तो भ्रष्ट हो गई है। वह सूर्यके प्रकाशके सामने मलिन वस्त्र लगा कर अन्धकारकी रक्षाका यत्न कर रहा है। तुम्हारे घरानेमें तुम्हारा पिता कलंकरूप है। मेरे इस कहनेमें तुम्हें उद्धतता जान पड़े तो मुझे तुम क्षमा करना। तुम-सदृश कर्मवीर, उत्साही और उदार युवक जो जैन-शासनकी प्रभावना, बढ़ंवारी और उन्नतिके लिए स्वार्थ त्याग करनेको तैयार न हो तो मैं कहूँगी कि प्रभुका जन्म और विहार इस पृथ्वीमें निष्फल है। जाओ मणिभद्र, जाओ, मैं तुम्हारा व्यर्थ समय ले रही हूँ। यह ताली लो। हाँ देखो, सामनेके दरवाजेमें होकर जानेका यत्न न करना, कारण मुझे भय है कि कोई विपत्ति सामने आकर खड़ी न हो जाय। इस पासके दालानमेंसे बागमें उतर कर और पूर्वकी ओरका दरवाजा इस तालीसे खोल कर निकल जाओ। तुम्हारे मार्गमें इस समय कोई विघ्न डालनेवाला नहीं है। जाओ, बन सके उतनी जल्दी इस घरको छोड़ कर चले जाओ। इस प्रकार बातें करते करते वह सुन्दरी मणिभद्रका हाथ पकड़ कर उसे छत पर ले आई। उस समय उस सुन्दरीका मुँह चाँदनीमें स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मणिभद्रने एक बार फिर उस सुन्दरीको पहचाननेकी कोशिश की। उसका शरीर रोमांचित हो उठा। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने उस सुन्दरीकी ओर दृष्टि कर काँपती हुई आवाजसे कहा—

"सुन्दरी, तुम क्या मुझे पहचानती हो? तुम्हारे इस उपकारका बदला मैं किस तरह चुका सकूँगा! मुझे जान पड़ता है कि तुम मानवी

नहीं, किन्तु देवी हो । जय ! महावीर भगवानकी जय ! देवि, मेरी यह कामना है कि तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो । मैं अब जाता हूँ ।"

" जाओ,—मणिभद्र, जाओ; जिस मार्गमें आनन्दका प्रवाह बह रहा है और जिस मार्गमें उद्वेगका नाम-निशान भी नहीं है उस मार्गमें जाओ; जिस मार्गमें मैत्री-भावकी शीतल और मृदु-लहरोंका आनन्द मिल सकता है और जिस मार्गमें चिन्ता-द्वेषकी लेश मात्र भी ज्वाला नहीं है उस मार्गमें जाओ; जिस मार्गमें ज्ञानके भण्डार खुले हुए पड़े हैं और जिस मार्गमें गर्व और अहंकारको जगह नहीं उस मार्गमें सीधे और निर्भय होकर जाओ; जिस मार्गमें आत्माकी उत्क्रान्ति हो सकती है और जिस मार्गमें अवनतिका सन्देह भी पाप गिना जाता है, उस मार्गमें अखंड जागृतिके साथ विचरो; जाओ, संसारके प्राणियोंके दुःख-ताप-कष्टको दूर करो और जगत्में शान्तिका—दयाका और धर्मका साम्राज्य स्थापित करनेमें सहायता दो । जाओ मणिभद्र, स्वयं महावीर भगवान् श्रावस्तीमें आकर धर्मका पवित्र उपदेश करनेके लिए लोगोंके द्वार द्वार पर जायँगे, तुम भी उसी मार्ग पर जाओ और आत्माको कृतार्थ करो, अनन्त मोक्ष-सुख प्राप्त करो और जगत्के दुःख दूर करनेके लिए आत्म-सुखका बलिदान करो । जाओ,—मणिभद्र, इससे अधिक मैं तुम्हें कुछ नहीं कह सकती । वीर प्रभु तुम्हारे मार्ग-दर्शक होंगे । "

इतना कह कर सुन्दरीने मणिभद्रका हाथ छोड़ दिया और उसे रास्ता बतानेके लिए वह स्वयं नसैनीके रास्ते नीचे उतरने लगी । मणिभद्र भी दिङ्मूढ़ हुएकी भाँति उस सुन्दरीके पीछे पीछे उतरने लगा । देखते देखते वे दोनों नीचे उतर आये और बागके दरवाजेके पास आकर खड़े हो गये । सुन्दरीने मणिभद्रके पाससे ताली लेकर स्वयं ताला खोल दिया । बहुत ही धीरेसे उसने दरवाजेके किवाड़ खोले । इसके बाद सुन्दरी दरवाजेकी एक ओर खिसक कर खड़ी हो रही । मणिभद्र

मैं फिर कब मिलूँगी—यह पूछते हो ?

—पृष्ठ २१।

The Manoranjan Press, Bombay.

दरवाजेके बाहर होनेके पहले एकबार फिर सुन्दरीके मुखचन्द्रके अवलोकनका लोभ संवरण न कर सका। उसने फिर थोड़ी देर तक उस सुन्दरीके बिखरे हुए घन-निबिड़ काले केशों और निर्मल-स्निग्ध-विस्तृत नेत्रोंसे मण्डित स्वभाव-सुन्दर मुँहको विस्मय-आश्चर्य-चकित दृष्टिसे देखा। जाते जाते मणिभद्रने काँपती हुई आवाजसे सुन्दरीको लक्ष्य करके कहा—

"देवि, तुम्हारी आज्ञाको स्वीकार कर तुम्हारे बताये हुए रास्तेसे मैं जाता हूँ; परन्तु मनमें इस बातका दुःख रह जायगा कि तुम्हारे उपकारका बदला मैं किस तरह चुका सकूँगा? दयामयी, यदि भविष्यमें कभी तुम्हारी पवित्र मूर्तिके दर्शनकी हृदयमें प्रबल इच्छा हो उठे तो क्या उसके लिए कोई रास्ता बतलानेकी कृपा करोगी? या ये ही दर्शन अन्तिम दर्शन होंगे?"

सुन्दरीने विस्मयके साथ अपना नत मस्तक ऊपरकी ओर उठा कर मणिभद्रकी ओर देखा और धीरेसे आँखोंको नीची कर बड़ी धीमी और मधुर आवाजसे कहा—"मैं फिर कब मिलूँगी, यह पूछते हो? मैं यह निश्चित तो नहीं कह सकती कि फिर मिल सकूँगी या नहीं; परन्तु हृदय भीतरसे विश्वास दिला रहा है कि बहुत करके मिल सकूँगी। आगे प्रभु जाने।"

इसके बाद वह मणिभद्रके उत्तरकी राह न देख कर लौट गई। मणिभद्र भी दरवाजेसे बाहर निकल कर सड़क पर पहुँच गया। वहाँसे उसने अपने पिताके विशाल, नीरव गृहकी ओर एक नजर फेंकी, जाती हुई उस ज्योतिर्मयी सुन्दरीकी ओर देखा और अन्तमें एक लंबी साँस लेकर बड़ी शीघ्रताके साथ वह आम्रवनकी ओर चल दिया।

चौथा परिच्छेद।

सुन्दरी।

सुन्दरी मणिभद्रको रवाना कर जल्दी जल्दी पाँव उठाती हुई ज्यों हीं बागके दरवाजेमें होकर घरमें प्रवेश करना चाहती है त्यों ही किसीने पीछसे आकर उसके कन्धे पर हाथ रक्खा। इस अपरिचित हस्त-स्पर्शसे वह एकदम चौंक उठी। इस बातके जाननेके लिए वह हरिणीकी भाँति भय-चंचल नेत्रोंसे चारों ओर देखने लगी कि इस निस्तब्ध रात्रिमें ऐसे एकान्त स्थलमें दूसरा कौन आ गया! परन्तु उसे वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। मार्गमें दीपक या चन्द्रका प्रकाश भी न था जिससे कि वह अपनी दृष्टिको आगे दौड़ा सकती। सुन्दरी थोड़ी देर तक चुपचाप वहीं खड़ी रही। इसके बाद उसे अचानक कुछ स्मरण हो जानेसे वह वहाँसे वापिस लौट कर जिस दरवाजेके पास उसने मणिभद्रको विदा दी थी वहीं आकर खड़ी हो रही। उस समय उदय होते हुए सूर्यकी अस्फुट किरणें धुँदला धुँदला प्रकाश फैला रही थीं। उसके साथ अस्ताचलकी ओर बढ़ते हुए चन्द्रमाकी मन्द ज्योत्स्नाका प्रकाश मिल जानेसे बागमें कुछ स्पष्ट उजेला हो रहा था। सुन्दरीने उत्सुकताके साथ दरवाजेकी ओर देखा तो उसे जान पड़ा कि किसीने पीछेसे आकर दरवाजा बन्द कर दिया है। उसे इस बातके स्थिर करनेमें बिल्कुल कठिनता न पड़ी कि दरवाजा बन्द करनेवाला चाहे जो कोई हो, पर है वह घरहीका मनुष्य; कारण दरवाजेकी जो साँकल लगाई गई है वह भीतरसे ही लगाई गई है। उसने सोचा कि "किसीने मेरी इस गुप्त बातको जान कर मेरा पीछा किया है और इसमें भी सन्देह नहीं कि वह कोई घरका ही आदमी है।" इस प्रकार

विचारके बाद उसने निराश होकर आकाशकी ओर देखा और घबरा-हटसे धड़कते हुए हृदय पर हाथ रख कर एक लंबी और गरम साँस ली।

इस बातके जाननेकी हमारे पाठकोंको प्रबल उत्सुकता होगी, कि यह सुन्दरी कौन है। हम चाहें तो इसका थोड़ासा परिचय इस जगह भी करा सकते हैं; परन्तु कितने काम ऐसे होते हैं कि जल्दी करनेसे वे सुधरनेकी जगह उलटे बिगड़ जाते हैं। हमारे पाठक भी इसका अनुभव अनेक वार पा चुके होंगे। पाठकोंको इसके लिए थोड़ी देर धीरज रखना चाहिए। प्रसंग आने पर हम स्वयं इसका सब हाल लिखनेका यत्न करेंगे। इस समय इतना ही कहना बस होगा कि वह सुन्दरी चाहे कोई हो, पर इतना जरूर है कि वह समन्तभद्रके घरकी कन्या या स्त्री न थी। यदि वह इस घरके रास्ते और कोठड़ियोंसे परिचित होती तो उसे जिस जगह सावधानी रखनी आवश्यक थी उस जगह वह जल्दीके मारे इतनी असा-वधान न रहती। अस्तु, वह थोड़ी देर तक तो विचार-मग्न होकर वहीं खड़ी रही और इसके बाद गिन गिन कर पाँव उठाती हुई अपने शयना-गारकी ओर चलदी।

वह एक-दो पाँव ही आगे बढ़ी होगी, कि उसे जान पड़ा कि सामनेकी ओरसे कोई दूसरी सुन्दरी चली आ रही है। उसने ध्यान देकर देखा तो उसे दिखाई दिया, कि जिस भाँति वसन्त ऋतुमें फूलोंके भारसे झुकी हुई माधवी लता वायुके झकोरोंके साथ नृत्य करती है उसी भाँति नाना अलंकारोंसे सजी और गज-गतिसे इधर उधर लचकती एक षोड़शी युवती मन्द मन्द मुसक्याती हुई उसीकी ओर आ रही है। इस आगता नई युवतीने अपना एक हाथ सुन्दरीके कन्धे पर फिर रक्खा और दूसरे हाथसे उसे अपने हृदयमें दबा कर बड़ी मधुरताके साथ कहा—

"बहिन, तुम्हारे साहस, धैर्य और उद्योगकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। बहिन रत्नमाला, मैं सच कहती हूँ कि तुम्हारे बिना

और किसीसे ऐसा जोखम भरा कार्य नहीं हो सकता था। अपने घरमें अपने ही माता-पिता द्वारा कैद किया गया कैदी सहजमें छुटकारा पा जाय और वह भी तुम जैसी निरी अबलाके हाथोंसे, इसकी तो कोई शायद ही कल्पना कर सके! रत्नमाला, घबरानेकी कोई बात नहीं है—मैंने जो ये सब बातें आँखोंसे देखली हैं, उनके लिए डरनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं चाहती तो तुझे रोक भी सकती थी; परन्तु मैंने वैसा नहीं किया; और चुपचाप सब कुछ मैं देखती रही। मैं क्यों तेरे इस कार्यमें नहीं पड़ी, और क्यों नहीं मैंने इसमें विघ्न डाला, इन सब बातोंको विस्तारके साथ कहनेका यह उपयुक्त समय नहीं है। इस समय यहाँ पर खड़े रह कर बात-चीत करना भी योग्य नहीं है। कारण घरके लोगोंके जग उठनेका समय हो गया है। हमको कोई इस जगह देख लेगा तो हमारी बड़ी बुरी दशा होगी। इस कारण चलो हम यहाँसे कुछ दूरी पर चली चलें। इसके लिए हमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिए कि हमारे कार्यकी किसीको रत्तीभर भी खबर न पड़े। इसके सिवा अधिक बातें इस जगह नहीं हो सकतीं।

इस दूसरी युवतीको पहचाननेमें रत्नमालाको कुछ भी समय न लगा। उसने उसे तुरत पहचान लिया कि यह सलाह देनेवाली युवती समन्तभद्रके मझले पुत्र सुभद्रकी पत्नी मणिमालिनी है। पाठकोंको यह स्मरण होगा और हम भी यह बात पहले लिख आये हैं कि समन्तभद्रके तीन पुत्र हैं। उनमें सबसे बड़ेका नाम रत्नभद्र, मझलेका सुभद्र और छोटेका मणिभद्र है। यही मणिभद्र हमारे इस उपन्यासका मुख्य पात्र है। इस कारण इसके विशेष परिचय करानेकी यहाँ जरूरत नहीं। समन्तभद्रके मझले पुत्र सुभद्रकी स्त्रीका नाम मणिमालिनी है। वही इस समय रत्नमालाके साथ बात-चीत कर रही थी।

रत्नमालाको समन्तभद्रके घरमें आये अभी सिर्फ एक-दो दिन ही हुए हैं। परन्तु इतने थोड़े समयमें ही रत्नमालाने देखा कि मणिमालिनी उसे

हृदयसे प्यार करती है और एक बहिनकी भाँति हर तरह उसकी सार-सँभाल रखती है। मणिमालिनीकी ऊपर कही गई बातें सुन कर कृतज्ञतासे रत्नमालाकी आँखोंसे पवित्र आँसुओंकी धारा बह चली । आवेगसे उसका गला भर आया। उसने गद्गद् होकर मणिमालिनीसे कहा—

"बहिन, क्षमा करो। मैं चाहती थी कि अपना यह गुप्त कार्य किसीको न जानने दूँगी; पर जान पड़ता है कि दैवी गति कोई दूसरी ही प्रकारकी होती है। चलो बहिन, मेरे शयन-गृहमें चलो । वहाँ कोई दूसरा नहीं है। वहाँ एकान्तमें हम खुले मनसे शान्तिके साथ बात-चीत कर सकेंगी। मैं तुम्हारे पास अविश्वासिनी बन कर रहना नहीं चाहती। अब तक जो कुछ हो चुका है उसका कारण और इसके बादका सब हाल मैं तुम पर यथार्थ रूपमें प्रगट कर देना चाहती हूँ।"

मणिमालिनीने कहा—"बहिन, तुम्हें इस प्रकार उदास और गद्गद् होनेकी जरूरत नहीं है। तुमने ऐसा कौनसा विश्वास-घात किया है कि जिसके लिए तुम्हें इतनी उदासीनता और दीनताके बतलानेकी जरूरत हो। बहिन, इस समय मेरी ऐसी स्थिति नहीं कि मैं तुम्हारे पास अधिक समय तक ठहर सकूँ; क्योंकि प्राणनाथके उठनेका समय हो चुका है। मुझे अब उनके पास पहुँच जाना चाहिए। एकान्तमें बैठ कर बात-चीत करनेके लिए यह समय उपयुक्त नहीं है। दो पहरको बन सके तो तुम मेरे शयन-गृहमें आना। उस समय हम निर्भय होकर बात-चीत तथा सलाह करेंगी। हमारे सिवा वहाँ कोई नहीं आ सकता। इस समय मैं तुमसे आज्ञा लेती हूँ। तुम भी यहाँ अधिक समय तक मत खड़ी रहो—चुपचाप चली जाओ।

इसके बाद दोनों रमणियाँ वहाँसे जुदी हो गईं । मणिमालिनीने बागके दरवाजेके पास होकर अपने स्वामीके शयन-गृहमें प्रवेश किया। सुभद्र उस समय उठनेकी ही तैयारीमें था । उधर रत्नमाला भी अपने शयन-गृहमें पहुँच गई।

मणिभद्र।

रात्रि पूर्ण होने पर है। पूर्वाकाशमें उषःकालकी लाल किरणें धीरे धीरे अपना साम्राज्य बढ़ाती हुई दिखाई दे रही हैं। पक्षियोंके कलरव और प्रातःकालकी मन्द-शीतल हवासे रत्नमालाका हृदय बहुत आह्लादित हुआ। उसने जो सारी रात विचार-चिन्ता और मणिभद्रको गुप्त रीतिसे भगा देनेके प्रयत्नमें बिताई—उसे जो शारीरिक और मानसिक श्रम उठाना पड़ा उससे उसका शरीर और मन दोनों ही थक कर चूर हो गये। वह जाकर पलँग पर पड़ रही। घरके लोग जिस समय उठनेकी तैयारीमें थे उस समय रत्नमालाकी आँखें मुँदने लगी थीं।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

पुर-प्रवेश ।

आज पूर्णिमा है। सवेरा हो चुका है। पूर्ण तेजसे प्रकाशित सूर्यने मानों वीर प्रभुका स्वागत करनेके लिए आज नया वेश धारण किया है। चह-चहाते हुए पक्षिगण मानों प्रभुकी स्तुति पढ़नेको उत्कण्ठित हो रहे हैं। श्रावस्तीके निवासियोंने पहले कई वार सूर्यका उदय देखा है और पक्षियोंका कलरव भी खूब सुना है; परन्तु आज वे उस पुरानेपनमें एक नया ही प्रकाश देख रहे हैं। आज प्रकृतिने उनके सामने कोई नया ही रूप धारण किया है। प्रकृति देवीने जो आज तक अपने आनन्द और शान्तिके भण्डारोंको बन्द कर रक्खा था वे भण्डार श्रावस्तीके जन-समाजके भाग्यसे आज अनायास खुल पड़े हैं। यह समाचार चारों ओर फैल चुका है कि पवित्र धर्म-साम्राज्यके स्थापक वीर प्रभु अपनी शिष्य-मण्डलीके साथ आज इस नगरीमें प्रवेश करनेवाले हैं, और उनकी चरण-धूलसे यह स्थान एक महान् तीर्थरूप बननेवाला है। सर्वत्र यह भास हो रहा है कि मनुष्य-पशु-पक्षी आदि सबकी ही आवाजमें मानों इसी एक समाचारकी ध्वनि उठ रही है।

ठीक समय पर वीर प्रभुने श्रावस्तीमें प्रवेश किया। उस समय उनकी अलौकिक दिव्यमूर्ति अपूर्व तेजसे प्रकाशित हो रही थी। उनके चारों ओर मुनि-श्रावकोंके झुण्डके झुण्ड चल रहे थे। धनदत्त सेठ और मणिभद्र भी हाथ जोड़े हुए बड़े विनीत भावसे प्रभुकी दोनों तरफ चल रहे थे। प्रभुकी विश्वमोहिनी मधुर हँसीकी स्निग्ध ज्योत्स्ना दर्शकोंके सरल हृदयको भक्तिसे परिपूर्ण कर रही थी। उनके आत्म-प्रकाश, मनो-गांभीर्य और शरीर-सौंदर्यकी एकत्र छटा देख कर श्रावस्तीका विशाल जन-समुद्र उमड़ उठा। जो प्रभुकी शान्त-गंभीर मूर्तिके दर्शन करता था वह भक्तिके स्वाभाविक आवे-

गसे प्रभुके चरणोंमें सिर झुकाये विना नहीं रह सकता था। प्रभुके दर्शन मात्रसे श्रावस्ती-निवासियोंके प्राण स्निग्ध और रोमांचित होने लगे। "जय, महावीर प्रभुकी जय ! जय जैन-शासनकी जय !" इत्यादि गंभीर गर्जनासे सारी नगरी गूँज उठी। श्रावस्तीके घर घरमें यह आनन्द-उल्लासमय ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। जन-समाजके हृदयसे निकलती हुई जय-ध्वनिने सारी नगरीमें अपूर्व भावना उत्पन्न कर दी। उसमें केवल एक समन्तभद्र तथा कुछ उसके पक्षके लोगोंके ही घर ऐसे बच रहे थे जहाँ इस स्वाभाविक आनन्दकी तरङ्गें नहीं पहुँच सकी थीं। इसके सिवा और सब जगह आनन्द उत्साह और शान्तिकी लहरें लहरा रही थीं।

किसी देश और किसी कालमें ऐसा नहीं हुआ कि किसी महापुरुषके सम्बन्धमें वहाँके जन-समाजका एक मत हुआ हो। यदि गणित-शास्त्रकी भाँति संसारके सब मनुष्योंका व्यवहार सीधा और सरल होता तो यह कहना कठिन है कि संसार इस समय किस स्थितिमें होता ? गणित-शास्त्र बतलाता है कि दो और दोको जोड़नेसे चार होते हैं। इसमें किसीको बाधा देनेका अधिकार नहीं है। इस बातको वह स्वयं अपनी सरल पद्धतिसे प्रमाणित कर देता है। मनुष्य-समाजमें भी यदि कोई ऐसा ही नियम होता कि उपकारी मनुष्यके प्रति भक्तिभाव ही रखना, दीनोंके प्रति दया ही करना और तटस्थ पुरुषोंके प्रति उदसीनता करना, अर्थात् राग-द्वेषके कारणोंके न होने पर राग-द्वेष न किये जाते तो इस संसारमें जो दिन प्रतिदिन नये नये विचित्र दृश्य हमारे देखनेमें आते हैं उन्हें हम न देख सकते। कोई यह पूछना चाहे कि महावीर प्रभुने समन्तभद्रका ऐसा क्या बिगाड़ा था कि जिसके कारण उसे प्रभुके साथ विरोध या शत्रुता करनी पड़ी, तो इसका उत्तर हम ऊपर दे चुके हैं; और वह यही कि संसार गणित-शास्त्र नहीं है। हम यह कहनेका साहस नहीं कर सकते कि ऐसा हो तब ही ऐसा होगा। पूर्वभव

और जन्म-जन्मान्तरके कारणोंका पृथक्करण करके संसारके शास्त्र-सदृश सिद्ध कर देना हमारा काम नहीं है । हमारी समझमें तो इस कठिन प्रश्नको त्रिकालदर्शी-सर्वज्ञके लिए ही छोड़ देना अच्छा है।

बूढ़ा समन्तभद्र बिछौने परसे उठना ही चाहता था कि इतनेमें मणिभद्रके भाग जानेके समाचार उसके कानों तक पहुँच गये । उन्हें सुन कर अभिमानी बूढ़े समन्तभद्रका पित्त एकदम भड़क उठा । सिरसे पाँव तक क्रोधकी ज्वाला प्रदीप्त हो उठी। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने कहा—" मणिभद्र तालेमें बन्द था, उसे निकाल कर किसने भगा दिया ! मेरे ऐसे बड़े घरमें कौन ऐसा विश्वासघाती—पापी—अधम मनुष्य है जिसने अपने प्राणोंका मोह छोड़ कर ऐसा भयंकर साहस किया ! जब तक मैं उस दुष्टका पता लगा कर उसे उचित सजा न दे लूँगा तब तक मेरे हृदयको कभी चैन नहीं पड़नेका । " उसने नाना प्रकारके तर्क-वितर्क करके देखा; परन्तु उसे किसी पर सन्देह करनेका कोई कारण न दिखाई दिया। अन्तमें उसने घरके सब लोगोंको बुला कर उनसे पूछा और जितने नौकर-चाकर थे उन सब पर बड़ी कड़ाई की; परन्तु किसीके द्वारा उसे सन्तोष-जनक उत्तर न मिला; इतना ही नहीं; किन्तु किसीके कहनेमें इतनी भी उसे निर्बलता न दिखाई दी जिससे उस पर सन्देह तक भी किया जाता । सबके मुँह पर यह स्पष्ट भाव दिखाई पड़ रहा था कि मणिभद्रके भाग जानेसे वे सब एक ही सरीखे आश्चर्यमें डूब रहे हैं । अन्तमें निराश होकर समन्तभद्रने उन सबको विदा कर दिया ।

नौकर-चाकर जब समन्तभद्रके घरसे बाहर हुए तब उनमें नीचे लिखी बात-चीत होने लगी । एक लंबे कदके पहरेदारने उन सबको खड़ा कर बहुत धीरेसे कहना शुरू किया; मानों कोई दूसरा उसकी बातोंको न सुन ले । वह बोला—" सच बातको क्या कोई मानेगा ? देखते हो कि यह कलिकाल है; परन्तु अब भी कुछ देवी-देवता

चले नहीं गये हैं। मैंने अपनी आँखोंसे देखा है कि रातके कोई बारह बजे एक मोटी-ताजी योगिनी आकाशसे झपाटेके साथ उतरी और मणिभद्रको जल्दीसे उठा कर क्षण भरमें न जाने कहाँकी कहाँ चली गई! इस घटनाको देख कर मैं तो चकित रह गया! इस समय यह बात किसी दूसरेसे कही जाय तो वह उलटा मुझको ही मूर्ख ठहरावेगा। इस लिए सबसे बड़ी चुप!"

दूसरी एक बूढ़ी स्त्रीने कहा कि "हाँ, हाँ, इसमें नई बात कुछ नहीं है। मणिभद्र दिखनेमें तो एक लड़कासा जान पड़ता है, पर वह किसी कच्चे गुरुका चेला नहीं है। न जाने उसने कितनी पुस्तकें पढ़ डाली हैं और न जाने कितने मंत्र-तंत्र साध लिये हैं। तुम नहीं देखते थे कि वह दिन भर घरहीमें बैठा रहता था। हम लोग तो इस परसे यह सोचते थे कि बेचारेकी मा हाल ही मरी है इस कारण उसे बड़ा दुःख होता होगा। पर यह सब तो उसकी बहानेबाजी थी! सच बात तो यह है कि वह सारे दिन देवी-देवताओंकी साधना ही किया करता था। उसको ही यदि देवी-देवता सहायता न देंगे तो किसको देंगे?"

तीसरे एक डेढ़ अक्कलने कहा—"यह ठीक है, पर मैं तो इस बातको नहीं मान सकता कि मणिभद्रको कोई मकानके बाहर ले गया। तुम मानो या न मानो, पर मैं कहे देता हूँ कि मणिभद्र दूसरी जगह कहीं नहीं गया है; किन्तु वह जो मंत्र-तंत्र जानता था उसके बलसे उस कोठड़ीकी दिवालमें ही समा बैठा है। वह हम लोगोंको देख सकता है, पर हम उसे नहीं देख सकते।"

धीरे धीरे ये सब बातें समन्तभद्रके कानों तक पहुँच गईं। पर वह साधारण मनुष्योंके जैसा कानोंका कच्चा नहीं था। उसने निश्चय कर लिया था कि लोग मणिभद्रके सम्बन्धमें चाहे जो कुछ कहें, पर इतना तो सच है कि

यह मेरे नौकर-चाकर या घरके लोगोंकी सहायताके बिना कभी छूट नहीं सकता । मुझे तो इसी बातके जाननेकी आवश्यकता है कि अपने जीको जोखममें डाल कर यह साहस किसने किया है । घरका मालिक होने पर भी यदि मैंने ऐसे विश्वास-घातकको पकड़ कर बाहर न कर पाया तो कहना चाहिए कि मेरी मालिकी और मेरी क्षमता धूलके बराबर है ।

इस प्रकार जिस समय चारों ओर चिन्ताकी ज्वाला धधक रही थी उसी समय वीर प्रभुके नगर-प्रवेशकी विराट् जयध्वनि लोगोंके कानोंसे आकर टकराई । इसीके साथ ये समाचार भी बातकी बातमें सारे शहरमें फैल गये कि वीर प्रभुके जुलूसमें मणिभद्रने सबसे अधिक भाग लिया है । बूढ़े समन्तभद्रकी क्रोधाग्निमें इस समाचारने घीकी आहुतिका काम किया । क्रोधके मारे वह अधमरासा हो गया । पाप करनेके पहले ही उसका प्रायश्चित्त आरंभ हो गया । सारे शहरमें जिस समय आनन्दका समुद्र लहरें ले रहा है उस समय समन्तभद्रके घरमें एक दारुण विषाद फैला हुआ है । जिस समय साधारण लोगोंके गृहोंके आगनमें सुवर्णका सूर्य उदय हुआ है उस समय समन्तभद्रके यहाँ सूर्यका प्रखर प्रकाश भी बड़ी विवशतासे प्रवेश करनेकी भाँति उदासीनता दिखला रहा है । यह हम नहीं जानते कि पापका प्रायश्चित्त इससे भी भयंकर होता है या नहीं । थोड़े समयके लिए हम पापके दंडके प्रश्नको ही एक ओर रखदें तो भी क्या पाप स्वयं ही दंडरूप नहीं है ? पापका उदय होना भी तो दंड ही है ।

गृह-स्वामीकी एसी दशा देख कर उसके आश्रित जनोंको चिन्तातुर और रंजीदा होना भी स्वाभाविक ही है । समन्तभद्रके घरमें नये मनुष्योंमें रत्नमाला और रत्नमालाकी नानी है । इन्हें यहाँ आये हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं । समन्तभद्रकी यह दशा

देख कर इन्हें भी बड़ा ही कष्ट हुआ। जिसके यहाँ ये पाहुने होकर रहे हैं उसके यहाँ एकाएक इस प्रकार दारुण शोक छाया हुआ देख कर इनका चित्त भी अस्थिर हो उठा। इसके सिवा रत्नमालाने यह भी सुना कि "यह जो सुन्दर लड़की आकर रही है, वह बड़ी ही चालाक जान पड़ती है, कहीं इसीने तो मणिभद्रको न भगा दिया हो ?" एक दासीके मुँहसे अचानक इन शब्दोंको सुन कर रत्नमालाको जान पड़ा कि लोगोंका मुझ पर बहम है और उनका वह बहम बढ़ता ही जाता है। उसने सोचा कि ऐसी स्थितिमें यहाँ रहना उचित नहीं। एकान्तमें उसने इस बात पर बड़ा विचार किया। इतने बड़े घरमें उसका सच्चा स्नेही मणिमालिनीको छोड़ कर और कोई नहीं था। इस कारण उसने उसीके पास जाकर सलाह लेना उचित समझा। एकवार उसकी इच्छा समन्तभद्रके घरसे भाग जानेकी भी हुई; परन्तु कई अनिवार्य कारणोंके कारण उसे अपनी वह इच्छा मनकी मनहीमें दबा देनी पड़ी। घरके सब लोग रत्नमालाको ही सन्देहकी निगाहसे देख रहे थे।

अन्तमें बड़ी चतुराई और कठिनाईसे रत्नमाला मणिमालिनीसे जाकर मिली और संक्षेपमें उसने अपनी सारी दशा उसे कह सुनाई। रत्नमालाकी ऐसी बेढंगी परिस्थिति देख कर मणिमालिनी भी घबरा उठी। उसने बड़ी कठिनतासे रत्नमालाको धीरज देकर हिम्मत बँधाई और साहस रखनेको कहा। इसके साथ उसने रत्नमालासे यह भी कहा कि बहिन, देखो, आज दिनमें अब यहाँ मत आना। बन सकेगा तो मैं स्वयं ही तुम्हारे पास आ जाऊँगी। उस समय निश्चिन्त होकर हम बात-चीत कर सकेंगी। घबराओ मत। वीर प्रभुकी कृपासे सब अच्छा ही होगा।

इस प्रकार मणिमालिनीके वचनोंसे रत्नमालाको बड़ा आश्वासन मिला। वह वहाँसे अपनी नानीके पास गई। वहाँ पर भी नाना तरहके तर्क-

वितर्कों और दुश्चिन्ताओंने उसका पीछा न छोड़ा । वहाँसे उठ कर वह अपने सोनेकी जगह पर चली गई । उस एकान्त स्थानमें उदास मुँह बैठे रह कर क्षणभर भी विचार करना उसके लिए एक युगके बराबर हो गया । उस समय रत्नमालाके मनमें यही एक चिन्ता बड़ी भारी थी कि कब मणि-मालिनी आवे और कब हम दिल खोल कर एक दूसरेके दुःख-सुखकी भागिन बनें; पर न जाने किस कारणसे उस दिन मणिमालिनी रत्नमा-लाके पास आ ही न सकी । रात्रि हो गई तो भी रत्नमालाकी विचार-मालाके मणके अब तक पूरे न हो पाये ।

छठा परिच्छेद।

परिचय।

आकाशमें पूर्णिमाका चन्द्रमा शोभा दे रहा है। स्वच्छ-श्वेत चाँदनीमें सारा ब्रह्माण्ड स्नान कर रहा है। शीतल-मन्द-स्निग्ध वायु नाना तरहके फूलोंकी सुगन्ध ग्रहण कर गृहोंकी खिड़कियों, दरवाजों और झरोखोंमें होकर दिग्-दिगन्तमें फैलनेका यत्न कर रहा है। गाढ़ निद्रा-निमग्न नर-नारियोंकी शान्तिमें कोई बाधा न पहुँचे, इसके लिए प्रकृति देवी भी अपना काम चुपचाप होकर किये जा रही है। दिन भरके उद्वेग, भय, शोक, उत्सुकता और परिश्रमके कारण थकी हुई श्रावस्ती इस उज्ज्वल-स्निग्ध चाँदनीके मध्य ऐसी जान पड़ती है मानों उसने ज्योत्स्ना-जलमें स्नान कर एक सफेद साड़ी पहनली है। इस समय कोई श्रावस्तीकी छतों पर चढ़ कर चारों ओर देखे तो उसे श्रावस्ती सचमुच ही एक योगिनीसी जान पड़ेगी। उसकी उस शान्त समाधि और मौन-साधनका कुछ ठिकाना है! इस समय सारा जगत् निद्रा-देवीकी सुमधुर गोदमें शान्ति और सुखका पूर्ण आनन्द भोग रहा है। दिनका राग-द्वेष-ईर्ष्या-प्रंपचमय कोलाहल शान्त हो गया है। पापी और पुण्यात्मा, सज्जन और दुर्जन, परोपकारी और अपकारी आदि सभी कोई सब प्रकारके भेद भावको छोड़ कर वसुन्धरा-माताके स्नेहमय आलिङ्गनका स्वर्गीय सुख प्राप्त कर रहे हैं।

इस सुखपूर्ण शान्तिके समयमें भी रत्नमाला जाग रही है। जगत्के ...न्दर्यकी ओर उसका ध्यान नहीं। उसकी आँखोंमें निद्रा या आलसका ...ान नहीं। आवेग और आशंकाके कारण उसके हृदयमें तुमुल

युद्ध मच रहा है। उसके उत्सुक नेत्रोंको देख कर जान पड़ता है कि वह किसीके आनेकी बाट जोह रही है; परन्तु उसे कोई कहींसे आता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। तब पाठकगण, उसकी विचार-समाधिके भंग करनेका हमें भी कोई अधिकार नहीं है। उसे इसी दशामें बैठे रहने दीजिए; और आइए, हम इस बीचमें उसके गत-जीवन पर एक दृष्टि डाललें।

रत्नमाला एक अच्छे धनी गृहस्थकी लड़की है। उसके पिताका नाम वसुभूति है। वसुभूति कौशाम्बीका एक प्रधान व्यापारी और समाजका नेता समझा जाता है। उसके रत्नमालाके सिवा और कोई सन्तान नहीं है। रत्नमालाकी प्रेममयी जननी उसे बालपनमें ही छोड़ कर स्वर्ग सिधार गई है। वसुभूतिका रत्नमाला पर प्राणोंसे भी बढ़ कर प्यार है। कुछ सगे-सम्बन्धियोंने वसुभूतिसे दूसरी बार ब्याह करनेके लिए बड़ा ही आग्रह किया; परन्तु उसने इस भयसे, कि शायद सौतेली माताके द्वारा रत्नमा-लाको दुःख उठाना पड़े, फिर ब्याह करना उचित नहीं समझा। रत्न-लाको वसुभूतिने बड़े लाड-प्यारसे पाला है। वसुभूति अपनी प्यारी कन्याकी सारी आशा-इच्छा और प्रार्थनायें सदा पूर्ण करनेके लिए तैं-यार रहता है। शोक और दुःखकी ज्वालायें रत्नमालाके कोमल शरीरको अब तक नहीं छू सकी हैं। पिताके द्वारा उसे सब सुख-शान्ति और वैभव प्राप्त है।

रत्नमाला लिखना पढ़ना अच्छी तरह जानती है। उस समय पुस्त-कोंका यद्यपि आज जैसा प्रचार न था तो भी सद्गुरुओंके समागम और प्राचीन ग्रन्थों द्वारा उसे बहुत कुछ नया-पुराना जानने तथा मनन करनेको मिला था। जैन-साधुओंके पवित्र और प्रभावशाली उपदेशसे उसका हृदय भक्ति और धार्मिक भावोंसे बड़ा कोमल बन गया था। संसारके स्वरूप और मानव-जीवनकी सफलताके सम्बन्धमें उसने नाना तरहके उपदेशोंको सुना। उन्हें सुन कर

वह बैठ न रही थी। उनके प्रभावसे उसके हृदयमें श्रेष्ठ नर-जन्म और श्रेष्ठ धर्मके सफल करनेकी भावनायें दिन दिन दृढ़ होती जाती थीं।

रत्नमालाकी उम्र इस समय सोलह वर्षकी है; परन्तु उसका कोमल हृदय अभीसे संसार-विरक्ति और मैत्री-भावनासे इतना अधिक रँग गया है कि वसुभूतिको उसके भविष्यत्के सम्बन्धमें अनेक बार चिन्ता करनी पड़ती है। एक बार साहस करके वसुभूतिने रत्नमालासे ब्याह करनेका प्रस्ताव किया। उसने सन्तान-प्रेमके वश हो उसे धन-दौलत और मान-मर्यादाका बहुत कुछ लोभ दिखा कर ब्याहके लिए बड़ा आग्रह किया; परन्तु रत्नमालाने किसी प्रकारके संकोच और अभिमानके विना पिताको जता दिया कि "पिताजी, आपकी आज्ञाको मानना मेरा सबसे पहला कर्तव्य है; परन्तु कौन जाने यह हृदय क्यों एक ऐसे आकर्षणके द्वारा खिंचकर अलक्ष्य मार्ग पर जा रहा है कि जिससे ब्याह करके भोग-विलासमें जीवन बिताना मुझे रुचता नहीं। यह जीव अनादि कालसे इस भव-वनमें चक्कर लगा रहा है, उन अनन्त चक्करोंमेंसे एक चक्कर यदि दया-धर्म और आत्म-हितके लिए उत्सर्ग कर दिया जाय तो क्या कोई बुराई होगी?" रत्नमालाकी बातोंको वसुभूति बहुत देर तक न सुन सका। पुत्रीके निर्दोष कण्ठसे वैराग्यकी आवाज सुन कर उसका सिर घूम गया। यह बात हम पहले ही लिख आये हैं कि वसुभूतिका हृदय पुत्रीके प्रेममें अभिभूत हो रहा था—वह उसके लिए सब कुछ भूल गया था; और यही कारण है कि रत्नमालाकी बातोंको सुन कर आज उसकी यह दशा हो गई।

वसुभूतिने सोचा कि इसे अब ब्याहके लिए कुछ कहना सुनना व्यर्थ है। उसके कच्चे हृदयमें वैराग्य-भावनाके जो संस्कार खूब दृढ़ जम चुके हैं उनके उखाड़ फेंकनेका प्रयत्न किया जायगा तो उससे इसे बहुत कष्ट हुँचेगा। इसके लिए तो अब सबसे अच्छा यही उपाय है कि इसे और

इसकी नानीको साथ लेकर कोई यात्रा की जाय। यात्रामें संसारकी ओर मोह पैदा करनेवाली नाना तरहकी सुन्दर सुन्दर भोग-विलासकी वस्तुओं और मनोहर शहरोंकी शोभाको देख कर स्वयं प्रकृति ही इसके हृदयमें ब्याहकी प्रेरणा करेगी। क्योंकि कच्चे संस्कार इस आसक्तिपूर्ण संसारके समागममें आकर फिर अधिक समय तक नहीं ठहर सकते। इस प्रकार स्थिर विचार करके वसुभूति अपनी सास और रत्नमालाको लेकर तीर्थयात्राके लिए चल दिया। रास्तेमें अनेक तीर्थोंकी यात्रा करते हुए वे लोग एक दिन श्रावस्ती आकर पहुँचे। वसुभूति और समन्तभद्रकी व्यापार-सम्बन्धसे बहुत दिनोंकी मित्रता थी। समन्तभद्रको वसुभूतिके श्रावस्तीमें आनेकी खबर मिलते ही वह स्वयं जाकर उसे अपने घर पर लिवा लाया और बड़े आदर-सत्कारके साथ उसने वसुभूतिकी आव-भगत की। वसुभूतिको श्रावस्तीमें आये अभी एक ही दो दिन हुए होंगे कि इतनेमें कोशाम्बीसे कोई ऐसे जरूरी समाचार आये, कि जिससे उसे लाचार होकर उसी समय कौशाम्बी चला जाना पड़ा। वह अपनी सास तथा रत्नमालासे यह कह कर, कि मैं वहाँका काम पूरा कर बहुत शीघ्र आजाऊँगा, उन्हें वहीं छोड़ गया।

परन्तु आज हम देखते हैं कि रत्नमालाको समन्तभद्रके घरमें रह कर एक क्षणभर भी बिताना एक भयंकर युग जैसा मालूम दे रहा है। रात्रिका प्रथम पहर बीत चुका और दूसरा पहर भी जान पड़ता है बहुत शीघ्र पूरा होना चाहता है। अब तक भी रत्नमालाकी आँखोंमें निद्राकी खुमारी या आलसका चिह्न नहीं दिखाई पड़ता। वह खिड़कीमें बैठ कर चन्द्रमाकी ओर एकटक लगाये देख रही है और इस बातकी खोज कर रही है कि मुझ गंभीर विचार-सागरमें बहती हुईके लिए कहीं नाव या किनारेका ठिकाना है या नहीं। बीच बीच चौंक कर वह यह भी बड़ी उत्सुकताके साथ देखती जाती है कि पीछेसे किसीके

पाँवोंकी आवाज तो नहीं सुनाई पड़ती है । उसके शयन-गृहका दरवाजा आधा खुला हुआ था । उसने चौंक कर पीछे दरवाजेकी ओर दूर तक नजर दौड़ा कर देखा; परन्तु उसे कोई दिखाई न देनेके कारण वह फिर विचार-मग्न होकर सोचने लगी कि अब तक मणिमालिनी क्यों नहीं आई? उसने मुझे वचन दिया था कि मैं रातको किसी न किसी तरह तुझसे अवश्य मिलूँगी । तो क्या वह अपनी प्रतिज्ञाको भूल गई ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । उसीने तो मुझे दरवाजा खुला रख कर बैठनेको कहा है । जान पड़ता है कोई भारी काम उस पर आ पड़ा होगा, इसी कारण वह मेरे पास नहीं आ सकी है । अस्तु, जरा देरसे आवेगी, पर आये बिना वह कभी नहीं रह सकती । इस प्रकार रत्नमालाके हृदयका वेग ज्यों ज्यों प्रबल होता गया त्यों त्यों रात्रि भी अधिक अधिक गंभीर और डरावनीसी होती गई । इतनेमें किसीके पाँवके इशारेसे दरवाजेके किवाड़ खुल गये । रत्नमालाने बड़ी उत्सुकताके साथ दरवाजेकी ओर देखा । पर यह क्या ? यह मणिमालिनी तो नहीं जान पड़ती । यह तो कोई पुरुष दिखाई दे रहा है । रत्नमाला भय और उत्कंठित मनसे एक दम उठ बैठी और भयसे काँपती हुई आवाजमें उसने उस आनेवालेसे पूछा—" तुम कौन हो ? "

आगन्तुक उसका कुछ उत्तर न देकर धीरे धीरे आगे बढ़ने लगा । उसकी इस धृष्टतासे रत्नमाला पहले तो बड़ी घबराई; पर जैसे ही वह पुरुष रत्नमालाके पास आकर खड़ा हुआ कि उसने हृदयके सब बलको इकट्ठा करके बड़ी हिम्मतके साथ कहा कि—"सावधान ! याद रखना कि वहाँसे जो एक पैर भी आगे बढ़े तो तुम्हारे लिए अपने मानकी रक्षा करना कठिन हो जायगा ! तुम-सदृश कुलवान् युवाओंको ऐसे एकान्त-निर्जन स्थानमें किसी अपरिचित अतिथि-कन्याके शयन-गृहमें घुसना क्या उचित है ? जाओ, तुम्हें यदि अपने प्राण, अपनी कीर्त्ति और अपनी कुल-मर्यादा प्रिय है तो वहींसे उलटे पैरों लौट जाओ । "

झूठ ! सर्वथा झूठ !! मोहान्ध युवक !
तू मुझे धोखा देना चाहता है !

—पृष्ठ ३१।

he Manoranjan Press Bombay

रत्नमालाकी इस प्रकार तेजस्वी और गर्वपूर्ण आवाज सुन कर वह युवा क्षणभरके लिए चुपचाप वहीं खड़ा रह गया। उसने आगे बढ़नेके लिए बहुतेरा प्रयत्न किया; परन्तु मंत्र-मुग्ध सर्पकी भाँति उससे एक पैर भी आगे न बढ़ा गया। उसे जान पड़ा कि उसका सारा शरीर शिथिलसा हो गया है।

रत्नमालाकी इस तीव्र भर्त्सनाको सुन कर भी वह न तो वहाँसे लौट ही गया और न कुछ बोला ही। उसकी यह धृष्टता देख कर रत्नमाला और अधिक क्रोधित होकर बोली—"तुम कौन हो? जवाब क्यों नहीं देते? वहीं पर खड़े रह कर बतलाओ कि यहाँ किस लिए आये हो?"

रत्नमालाकी गंभीर, तीव्र और बढ़ती हुई आवाज सुन कर उसने सोचा कि जो आस-पासके लोग जग उठेंगे तो मेरी बड़ी अपकीर्ति–निन्दा-बुराई होगी। इससे वह बहुत ही घबराया। उसे अपने दुष्ट आशय पर क्षण भरके लिए पश्चात्ताप भी हुआ। अन्तमें उसने बड़ी नम्रताके साथ धीरेसे कहा—"रत्नमाला, क्षमा करो; मैं मणिमालिनीका स्वामी सुभद्र हूँ।"

रत्नमालाने कहा—"तुम मणिमालिनीके स्वामी हो? अच्छा, ऐसी गंभीर रातमें मेरे एकान्त शयन-गृहमें तुम्हारे आनेका क्या कारण है? क्या मणिमालिनीने तुमको भेजा है?"

सुभद्रने डरते डरते काँपती हुई आवाजसे कहा—"अच्छा यही समझ लो कि मणिमालिनीने ही मुझे यहाँ भेजा है।"

रत्नमालाने सुभद्रकी आवाज परसे उसके हृदयकी पाप-वासनाको समझ लिया। उसे इस बातके स्थिर कर लेनेमें कुछ भी समय न लगा कि वह मणिमालिनीका झूठा नाम ले रहा है। क्षोभ-रोष-लज्जा और तिरस्कारसे उसका सिर गरम हो उठा। हृदय धड़कने लगा। पैरकी ठोकरसे ठुकराई हुई नागिनकी भाँति वह बड़े जोरसे चिल्लाकर बोल उठी—"झूठ! सर्वथा झूठ!! मोहान्ध युवक! क्या तू मुझे धोखा देना चाहता है? यह देख कर तुझे शर्म आनी चाहिए कि तुझ-सदृश इन्द्रियोंका गुलाम मणिमालिनी जैसी पवित्र

साध्वी स्त्रीका पति है? सुभद्र, कुछ सोच समझ कर कह कि क्या तू यह समझ रहा है कि एक अतिथि-कन्याके साथ विश्वास-घात करके मैं अच्छा फल पा सकूँगा? चल बाहर हो; और एक क्षण भरकी भी देर न करके अपने पापपूर्ण कलुषित हृदयको यहाँसे वापिस लौटा ले जा! जरा भी गड़बड़ या गोलमाल किया कि याद रख मेरे चिल्लाने मात्रका काम है। आस-पासके सब लोगोंको जगा कर तेरे पापका प्रायश्चित्त तेरे ही हाथोंसे कराऊँगी?"

इतने पर भी सुभद्र, नरक-मार्गमें एक पैर आगे बढ़ानेके तीव्र लोभको न रोक सका। वह कुछ हँस कर रत्नमालासे बोला—"सुन्दरी, मणिभद्रको कृतार्थ करनेके लिए तो अपने जीवनकी भी कुछ परवा न कर तुमने इतना भयंकर साहस कर डाला और जो तुम्हारे प्रणयका भिक्षुक बना है उसका इतना तिरस्कार—उससे इतनी घृणा! इसका क्या कारण है! रत्नमाला, अब भी कुछ नहीं गया। अपने स्वर्गीय प्रेमका दान दे कर इस अधमको कृतार्थ करो—इस दास पर दया करो।"

सुभद्रके वचनोंको सुन कर रत्नमालाका सारा शरीर आगकी भाँति जल उठा। उसने उसके सामने खड़े रह कर, गर्जना कर सियाल पर झपट पड़नेवाली सिंहनीकी भाँति स्वाभाविक अभिमान भरी आवाजसे गर्जकर कहा—"ओ कुलकलंक! कामान्ध-युवक! इस जगह खड़ा रह कर मुझे और मेरे शयन-गृहको अपवित्र—कलंकित न बना! मैं तुझ जैसे श्वान-वृत्तिवाले नराधमोंके साथ अधिक बोलना नहीं चाहती। इस लिए या तो तू स्वयं इस घरसे बाहर हो जा, नहीं तो मैं स्वयं तुझे धक्के दे निकाल बाहर करूँगी। वसुभूतिकी कन्या यदि तुझ जैसे कामी दुराचारीको सज़ा देनेके लिए इतना बल अपनेमें न रखती होती तो ऐसे भरे घरमें उसे एक रात्रि भी बितानी कठिन पड़ जाती!"

गर्विणी—तेजस्विनी और ब्रह्मचारिणी रत्नमालाकी आँखोंसे निकलती हुई अग्नि-ज्वाला-सदृश किरणोंके तेजको सुभद्र अधिक समय तक न

सह सका। सुभद्र रत्नमालाके कमरेमें प्रवेश करते समय जिस कामसय शरीरको लाया था, वह रत्नमालाकी क्रोधरूपी ज्वालामें जल कर खाक हो गया। वह वहाँसे पीछा लौटा और बहुत ही धीरे धीरे पैर उठा कर जाने लगा। यह देख कर रत्नमालाका क्रोध और गर्व कुछ शान्त हो गया। उसे कमरेके बाहर होते हुए देख कर रत्नमाला बोली—" सुभद्र, जरा खड़े रहो, बाहर न जाओ। मैं समझती हूँ कि तुम अब पहलेके सुभद्र नहीं रहे। इसी कारण मैं तुमसे कुछ अधिक बात करना चाहती हूँ। अब मुझे तुम्हारे साथ बात-चीत करनेमें कोई भय नहीं है। मेरा विश्वास है कि पहले जो पापी सुभद्र आया था, वह अब मर चुका है और उसके बदलेमें खास मेरा भाई मेरे सामने खड़ा हुआ है। क्या मुझे तुम एक बात पूछनेकी आज्ञा दोगे ? "

सुभद्र खड़ा रह गया सही, परन्तु रत्नमालाके सामने होनेकी उसे अब हिम्मत न पड़ी। इस लिए स्वयं रत्नमालाने उसके पास आकर पूछा कि " इस समय मणिमालिनी कहाँ होगी ? "

सुभद्र न तो इसका कुछ उत्तर दे सका और न इस बातको स्थिर कर सका कि क्या उत्तर दिया जाय। थोड़ी देर तक वह सिर झुकाये हुए वहीं खड़ा रहा। परन्तु अन्तमें वह सच बातका छिपाना व्यर्थ समझ कर बोला—" देवी, मुझे क्षमा कीजिए। मैं अपने इस अपराधके कारण बहुत ही शर्मिन्दा हो रहा हूँ। मणिमालिनीको मैंने स्वयं एक कोठड़ीमें बन्द कर रक्खा है। मैं आज तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन भर अब कभी ऐसा नीच काम न करूँगा। "

रत्नमालाने कहा—" अच्छा, मैंने तुम्हारे सब अपराधोंको क्षमा कर दिया। अब तुमसे मेरी एक प्रार्थना है। और वह यह कि तुम मेरे लिए कोई ऐसा प्रबन्ध कर दो कि जिससे मैं किसी तरह आज ही रातको धनदत्त सेठके घर पहुँच जाऊँ।"

सुभद्रने खिन्न हृदयसे रत्नमालाके मुँहकी ओर देख कर एक ऊँची साँस ली। उस समय उसकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग रही थी। उसने बड़ी नम्रताके साथ रत्नमालासे कहा—"बहिन रत्नमाला, तुम एक वार आशा दिला कर फिर मुझे निराश क्यों कर रही हो? तुमने यह अभी थोड़ी ही देर पहले कहा था कि "मैंने तुम्हारे सब अपराधोंको क्षमा कर दिया। फिर इसी समय धनदत्तके यहाँ जानेके लिए इतनी जल्दी क्यों कर रही हो? मुझे क्षमा कर चुकने पर बाद भी यदि तुम यहाँसे चली जाओगी तो यह दुःख मैं फिर मरते दम तक भी न भूल सकूँगा। मेरा मन सदा इस बातसे दग्ध होता रहेगा कि तुमने मुझे क्षमा किया ही नहीं। बहिन, तुम-सदृश दयालु देवी ही जब मेरे अपराधोंको क्षमा न कर सकी तो दूसरा कौन क्षमा करेगा?"

रत्नमाला कुछ लज्जितसी होकर बड़े विचारमें पड़ गई। अन्तमें उसने कहा—"अच्छी बात है, मैं आज धनदत्तके घर न जाऊँगी। अब तुम जाकर मणिमालिनीको मेरे पास भेज दो।"

आनन्दके मारे सुभद्रका गला भर आया। वह यह देख कर बहुत ही कृतार्थ हुआ कि रत्नमालाने उसे वास्तवमें क्षमा कर दिया है। सुभद्रने जाते समय हाथ जोड़ कर पृथ्वीकी ओर नीची नजर किये कहा—"देवि, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। मैंने देखा कि जैसा तुम्हारा हृदय पवित्र, उन्नत और श्रेष्ठ है वैसा ही वह क्षमापूर्ण भी है। अब मैं तुमसे आज्ञा लेता हूँ और जाकर मणिमालिनीको तुम्हारे पास भेजता हूँ।"

यह कह कर सुभद्र कमरेके बाहर हुआ। बाहर निकलते समय उसने एकबार फिर रत्नमालाको सिर झुकाया। इसके बाद वह प्रायश्चित्तसे पवित्र हुए पापीकी भाँति पश्चात्ताप करता हुआ कुछ प्रसन्न और कुछ दुखी हृदयसे जल्दी जल्दी अपने कमरेकी ओर बढ़ा।

सातवाँ परिच्छेद ।

सुभद्र कहाँ गया ?

मनुष्य-जातिको प्रायः एक ही प्रकारकी मृत्युका अनुभव होता है। अर्थात् मनुष्य जब अपने सगे-सम्बन्धियों और विपुल धन-दौलतको छोड़ कर इस संसारसे चल बसता है तब कहा जाता है कि उसकी मृत्यु हो गई । स्थूल देह और स्थूल सम्पत्तिको छोड़ कर अजाने—अपरिचित देशमें—परलोकमें जाना स्थूल मृत्यु है । मनुष्य जातिको इस स्थूल मृत्युका अनुभव जैसा कष्ट देनेवाला होता है वैसा और कोई नहीं होता । परन्तु इस स्थूल मृत्युके पहले जो सैकड़ों सूक्ष्म—भाव-मृत्युओंका अनुभव यह मनुष्य एक ही शरीरमें करता है उसकी खबर रखनेवाले लाखों, बल्कि करोड़ोंमें भी मिलने कठिन हैं । हमने जो यहाँ यह प्रस्तावना की है वह इस लिए कि सुभद्रकी भाव-मृत्यु आज हो चुकी है ।

जो सुभद्र पाप-वासनाओंको हृदयमें रख कर रत्नमालाके पास गया था उस सुभद्रका हृदय आज कोई भिन्न ही प्रकारकी पुण्य-भावना—पवित्र विचारोंसे उमड़ा रहा है । पहले और अबके सुभद्रमें जमीन आसमानके जितना अन्तर पड़ गया है । यह सुभद्र काम-मोह-रूप-गर्वसे अन्धे हुए पहले सुभद्रकी भाँति नहीं है; किन्तु यह वह सुभद्र है जिसने धर्म, आत्म-हित और पवित्रताके मार्गमें बड़ी जल्दीसे पैर बढ़ा कर अपने आत्माको भव्य, निर्मल और भद्र बना लिया है । पहले सुभद्रकी भाव-मृत्यु हो जानेसे आज उसका सुभद्र नाम सार्थक हो गया है ।

सुभद्रने रास्तेमें चलते चलते विचार किया—“ इस बातको कौन कह सकता है कि मनुष्यके आत्म-हितके दरवाजे कितने कारणोंके मिलने पर नित्य खुलते होंगे ? मेरे लिए तो रत्नमालाका क्रोध ही एक महान्

आशीर्वादरूप हो गया। अब मुझे विश्वास हुआ कि संसार केवल मुझ-जैसे विषयोंके कीड़ोंसे ही भरा हुआ नहीं है; किन्तु रत्नमाला जैसी कितनी ही देवियाँ भी वसुन्धरा माताकी गोदमें निवास करती हैं। सचमुच ही आज रत्नमालाने 'बहुरत्ना वसुंधरा' की कहावतको चरितार्थ कर दिया। अहा! रत्नमालाके उस समयके दिव्य तेज और प्रभावका क्या ठिकाना है कि जिसकी एक ही फटकार खाकर मेरी सारी दुष्ट-वासनायें भस्म हो गईं। क्या यह ब्रह्मचर्यका तेज होगा! या हृदयकी जाज्वल्यमान पवित्रताका प्रकाश होगा! यह बात पहले मैं नहीं जानता था कि एक अबला स्त्री भी मुझ जैसे दुर्दमनीय पुरुषको इस भाँति क्षण मात्रमें पराजित कर देगी। परन्तु अब मैंने देख पाया कि पवित्रताके पास अपवित्रताका और धर्मके पास अधर्मका अन्धकारमय राज्य क्षणभर भी नहीं ठहर सकता। रत्नमालाने आज मेरा उद्धार कर दिया, और इस लिए आजसे वह मेरी गुरु हो गई। उसने बहुत ठीक कहा था कि मणिमालिनी जैसी पवित्र नारीका पति मुझ-जैसा दुर्बुद्धि नहीं हो सकता। मणिमालिनीको अब तक मैंने जो कष्ट दिया उसके लिए अब पश्चात्ताप करनेसे कुछ लाभ नहीं। अब तो यही एक मात्र उपाय है कि जाकर मणिमालिनीसे क्षमा माँगी जाय और साथ ही किसी ऐसे सद्गुरु—महापुरुषका शरण लिया जाय जिससे इस समय पवित्रताके मार्गमें बढ़ती हुई मेरी भावनाओंसे लाभ उठाया जा सके। और इस समय यही मेरा कर्त्तव्य भी है।" इसी समय सुभद्रको कोई बात याद आ गई, इस कारण वह शीघ्रताके साथ पाँव उठाता हुआ अपने कमरेकी ओर गया। उसने कहा—मणिमालिनीको जल्दी भेज देनेका मैं रत्नमालाको वचन दे आया हूँ। इसमें विलम्ब होनेसे असंभव नहीं कि वह पवित्र-हृदयकी देवी मुझ पर गुस्सा हो जाय। इसके साथ ही उसने कमरेके पास आकर उसका ताला खोल दिया। कमरेमें बेचारी मणिमालिनी बड़े उदासमुँह बैठी हुई थी। मानसिक कष्टका भार उसे इतना बोझरूप हो रहा था कि उससे शरीर परके वस्त्रका बोझा भी न सहा

गया । उसके केश इधर उधर बिखरे हुए थे । वह बड़ी उत्सुकताके साथ एकटक अनन्त आकाशकी ओर देख रही थी ।

सुभद्र अब तक मनके आवेगको वहीं दबा देनेका यत्न कर रहा था और उसमें उसे थोड़ी बहुत सफलता भी प्राप्त हुई थी । परन्तु ज्यों ही उसने उस अवस्थामें बैठी हुई मणिमालिनीका भक्ति और स्नेहपूर्ण मुँह देख पाया त्यों ही वह उसके पाँवोंमें पड़ कर एकदम रो उठा—हृदयका वेग उससे न रोका जा सका । उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली । उसने अपना सब हाल मणिमालिनीसे कहकर उस पर किये गये अपने कठोर अत्याचारकी उससे क्षमा माँगी । इसके बाद अन्तमें उसने मणिमालिनीसे कहा—"रत्नमालाने मुझसे कहा है कि मैं तुम्हारा अयोग्य स्वामी हूँ; और मुझे भी यही जान पड़ता है कि तुम जैसी सती-साध्वीको कष्ट पहुँचा कर मैंने जो पाप किया है वह किसी तरह नष्ट नहीं हो सकता । इतने पर भी मैं तुमसे एकबार क्षमाकी भीख माँगता हूँ । जिस प्रकार रत्नमालाने मेरे सब अपराधोंको दया कर क्षमा कर दिया उसी प्रकार आशा है तुम भी क्षमा प्रदान करोगी । मैं तुम्हारा अयोग्य पति हूँ और इस कारण एक अयोग्य व्यक्तिपर क्षमा कर अपने स्वाभाविक उदार हृदयका परिचय दो । मेरी यह अन्तिम प्रार्थना है । इसके सिवा दूसरी प्रार्थना करनेका न मुझे समय है और न उसके लिए मैं योग्य ही हूँ । अब जब मुझे जान पड़ेगा कि मैं तुम्हारा योग्य स्वामी बन सका हूँ—तुम्हारा योग्य सहधर्मी बन सका हूँ और तुम्हारे पास बैठनेका अधिकारी हो सका हूँ तब एकबार फिर तुम्हारे पवित्र दर्शन करूँगा । देवी, इस समय अधिक बात करनेसे मेरा अशान्त मन और अधिक अशान्त होगा, इस लिए आज्ञा दो और मुझे भूल जाओ । मैं तुम्हारा योग्य स्वामी न था और न अब हूँ । मैं विषय-वासनाका एक कीड़ा था । विषयी मनुष्यका ब्याह ब्याह नहीं कहा जा सकता; किन्तु पाशविक-वृत्तिके चरि-

तार्थ करनेका एक राक्षसी साधन मात्र है। मैं इस समय तुमसे क्षमाकी प्रार्थनाके सिवा और कोई प्रार्थना नहीं कर सकता। मुझे क्षमा प्रदान करदो तो मैं अपना रास्ता पकड़ूँ।

मणिमालिनीकी आँखें नीचेकी ओर झुक गईं। यह देख कर सुभद्रने समझ लिया कि मणिमालिनी उसे क्षमा कर देनेको तैयार है। इसके बाद वह वहाँ ज्यादा देर तक खड़ा न रह कर एकदम नीचे उतर आया।

इस बातका हमें पता नहीं कि विरक्त-चित्त सुभद्र इस समय कहाँ जाना चाहता है; परन्तु घरके बाहर आकर उसने थोड़ी देर तक कुछ विचार किया। उस समय बूढ़े समन्तभद्रका चिन्तातुर विषण्ण मुँह उसकी मानसिक आँखोंके सामने आ खड़ा हुआ। उसने पिता और पत्नीको लक्ष्य कर एक बार फिर सिर झुकाया। दिखाई दिया कि उसके आयत-उज्वल नेत्रोंमें पानी भर आया है। उसने यह भी सोचा कि वह कहाँ जाता है, और किस लिए जाता है;तथा इस नौकर-चाकरोंसे भरे हुए विशाल घरको छोड़कर चले जानेसे उसकी कितनी विडम्बना होगी, कितना कष्ट और कितना संताप उसे सहना होगा! इसके सिवा उसके चले जाने बाद पूज्यपाद पिताजीकी क्या दशा होगी और वह ही कहीं बीमार पड़ गया तो उसकी सार-सँभाल कौन करेगा? वहाँ उसका कौन सहायक होगा! इस प्रकार सुभद्र जब विचार कर रहा था उसी समय मानों किसीने छिपे हुए कहा कि—"सुभद्र, इन स्थूल भोग-विलासों—विषय-वासनाओंको भूल कर जगत्पिता—जगत्के उद्धार करनेवाले पिता वीर प्रभुके चरणोंकी शरण गृहण कर। उनके आश्रयसे तेरी सब आधि-व्याधि दूर होंगी; तेरा आत्मा पवित्र होगा। एक क्षणभरके लिए शान्ति लाभ कर। हृदयकी पवित्रता और शक्तिको व्यर्थ न खो!

सुभद्र सीधा खड़ा होकर शीघ्रताके साथ धनदत्त सेठके घरकी ओर जाने लगा। सवेरा होनेमें अभी कुछ देरी है। पिछले पहरकी सूचना करनेवाली प्रभातियोंकी मधुर आवाज सारे शहरमें सुधाकी वर्षा कर रही थी।

आठवाँ परिच्छेद।

रत्नमाला और मणिमालिनी।
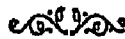
सुभद्रके चले जानेसे मणिमलिनीको बड़ा दुःख हुआ। वह विषण्ण हृदयसे रत्नमालाके पास पहुँची। उसे रत्नमालाको मुँह दिखाना बहुत ही लज्जा-जनक जान पड़ा; परन्तु आखिर नीचा मुँह किये वह उसके पास गई। उस समय उसकी आँखोंमें आँसू छलक आये थे। बड़ी कठिनताके साथ काँपती हुई आवाजसे उसने कुछ बोलनेका साहस किया। उसे जान पड़ा कि रत्नमालाके साथ अनुचित व्यवहार कर उसके पति सुभद्रने जो अपराध किया था, वह मानों उसीने किया है और इसके लिए उसका हृदय भर आया। बोलनेका यत्न करने पर भी उसके मुँहसे एक शब्द तक न निकल सका। यह देख कर रत्नमाला एक क्षण भरके लिए स्तब्धसी हो गई। इसके बाद वह मन्द मुसक्यान द्वारा हृदयके सन्तोषको प्रगट करती हुई मणिमालिनीके पास जाकर उसका हाथ पकड़ लाई और उसे अपनी शय्या पर बैठा कर उसने अपने आँचलसे उसके आँसू पोंछ डाले। जब मणिमालिनीका मन कुछ स्वस्थ हुआ तब कोमलांगी रत्नमालाने उससे पूछा—"क्यों बहिन, किस लिए रोती हो? कल रातको तो तुमने ही मेरी रक्षा की, और आज तुम्हीं रो रही हो? यह देख कर मुझे बड़ा खेद और आश्चर्य होता है। बतलाओ, तुम्हें रोती हुई देख कर फिर मैं कैसे धीरज रख सकती हूँ। तुमने जिन वचनों द्वारा मुझे धीरज दिया था उन्हें तुम भी तो स्मरण करो।"

मणिमालिनीने कहा—"बहिन, सचमुच तू मानवी नहीं देवी है। तूने मुझ हतभागिनीके स्वामीको क्षमा करके उनके हृदयको पाप मार्गकी

ओरसे सदाके लिए फेर दिया है। तेरे इस असीम उपकारको मैं कभी नहीं भूल सकती। परन्तु बहिन, यह सब कुछ होने पर भी मेरे हृदयकी जलती हुई चिन्ता किसी तरह शान्त नहीं हुई है। मुझे यह चिन्ता बहुत ही जला रही है कि मेरे स्वामी कहाँ गये होंगे? अब मैं पुनर्वार उनके दर्शन कर सकूँगी या नहीं? जाते समय वे इतना ही कह गये हैं कि जब मैं तेरा योग्य स्वामी बन सकूँगा—तेरा योग्य सहधर्मी बन सकूँगा तब फिर एक बार तेरे दर्शन करूँगा। बहिन, सचमुच इस संसारमें मैं ही एक ऐसी हतभागिनी हूँ कि स्वामीके रहते हुए भी स्वामि-हीन हो गई, सिर पर छत्र रहने पर भी निराश्रित हो गई। बहिन, जीवन-सर्वस्वके देखे बिना हृदय जिन दुःखोंका आज केन्द्र बन गया है उन्हें देख कर एकबार मनमें आता है कि अपघात करडालूँ! जानती हूँ कि अपघात करना महापाप है; परन्तु पतित्यक्ता अबलाके लिए ऐसे जीनेसे बढ़ कर कोई दूसरा महापाप नहीं हो सकता। वे कैसे भी हों; मेरे स्वामी हैं—मेरे जीवन-देवता हैं; मेरे जीवन-सर्वस्व हैं। बहिन, तुझे छोड़ कर मेरे हृदयके कष्टोंको और कोई नहीं जान सकता। स्त्रियोंके हृदयको पुरुष तो क्या, पर अनेक बार स्त्रियाँ भी उसे नहीं जान पातीं। तू बड़ी बुद्धिमती और सीधे हृदयकी है। तेरा चरित देवियों जैसा है। यही कारण है कि मैं अपने मनकी बातें तुझसे खुल कर कह रही हूँ।" इतना कहते कहते माणिमालिनीका हृदय भर आया। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

रत्नमालाने बड़े प्रेमसे उसके आँसू पोंछ कर कहा—" बहिन, अब रोने-धोनेसे कुछ लाभ नहीं है। मैं जो कहूँ उस पर विश्वास करो। मुझे दृढ़ निश्चय है कि सुभद्र घर आये बिना न रहेंगे। जब कि वे पापका स्वरूप जान चुके हैं, अपने किये कर्मों पर उन्हें अत्यन्त पश्चात्ताप है और इसके लिए वे प्रायश्चित्त भी करनेको तैयार हैं. तब वे पवित्र और ज्ञानी बन कर अवश्य तुम्हारे दर्शन करनेको आवेंगे। पापपूर्ण हृदय जब पवित्रताके

मार्ग पर चलनेको आगे बढ़ता है तब उसका वेग बड़े जोर पर होता है। तुम्हारे प्रियके हृदयमें इस समय जो वेग शुरू हुआ है, वह जब तक कृतकार्य न हो लेगा तब तक सुभद्रको न छोड़ेगा। इसके लिए घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं। मुझे विश्वास है कि तुम्हारे प्रिय घर पर आवेंगे और तुम्हें दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे। यही नहीं, किन्तु लोगोंके आँसू पोंछनेके लिए वे फिर संसारी बनेंगे। बहिन, व्यर्थकी घबराहटमें पड़ कर हृदयको संतप्त करना ठीक नहीं है। देखो बहिन, मुझे अब ज्यादा बात-चीत करनेका समय नहीं है, इस कारण मुझे जो कुछ बातें तुमसे कहनी है वे सब मैं कहे देती हूँ। बहिन, यदि मैं चाहती तो इससे पहले ही कभीकी भाग गई होती; परन्तु तुम्हें कुछ खास बातें सुनानी थीं, इस कारण इस तरह चले जाना मुझे उचित नहीं जान पड़ा; और इसी लिए मैं अब तक इस घरमें रह सकी हूँ। जरा ध्यान देकर मेरी बातोंको सुनो।

रत्नमालाके इस भाँति शान्त-गंभीर और धीरज बँधानेवाले वचनोंको सुन कर मणिमालिनीके हृदयको बहुत कुछ शान्ति मिली। वह सँभल कर बैठ गई। उसकी प्रकृति अब बहुत स्वस्थ जान पड़ी। यह देख रत्नमालाने अपनी बात-चीतका सिलसिला आगे चलाया। वह बोली—बहिन, तुम जैसी अपनेको हतभागिनी समझ रही हो, उससे मैं क्या कुछ कम हतभागिनी हूँ! इस घरमें जबसे मेरा पाँव पड़ा है तभीसे तुम्हारे कुटुम्ब पर एकके बाद एक विपत्ति आती ही जा रही है। कल तो मैंने मणिभद्रको भगाया और आज विना जाने तुम्हारे स्वामीको भगानेका भी मैं ही कारण हुई। मैं तुम्हारे घरमें आकर कुछ काम आती सो तो दूर रहा उल्टी तुम लोगोंके लिए एक शापके समान हो गई। बहिन, इस दुःखको मैं किसी तरह नहीं सह सकती।" रत्नमालाकी बातोंको सुन कर मणिमालिनीको भी बहुत दुःख हुआ। परन्तु आगेकी बातोंको सुननेके लिए उसकी जो उत्सुकता बढ़ रही थी उसके कारण वह एक शब्द भी बीचमें बोल कर बातोंके

सिलसिलेको तोड़नेका साहस न कर सकी। इतने पर भी उससे न रहा गया। वह रत्नमालाके न देखते आँखोंके आँसू पोंछ कर बोल उठी। उसने कहा—

"बहिन, बीती हुई बातोंको याद कर तेरा यह दुखी होना मुझे अच्छा नहीं लगता। सच कहती हूँ बहिन, तेरे साहसको देख कर मैं इतनी अचम्भेमें पढ़ गई हूँ कि तुझ जैसी एक सुन्दरीके द्वारा मणिभद्रके छुड़ानेका इतना बड़ा साहस कैसे हो सका। मुझे यह विश्वास नहीं था कि स्त्रियोंमें भी इतना बल, इतना साहस और इतनी हिम्मत हो सकती है!"

रत्नमालाने मणिमालिनीको बोलते हुए रोक कर अत्यन्त शान्ति और कोमलतासे कहा—"इसी लिए तो मैं तुमसे बातें करनेको अब तक जगती रही। मैं सब हाल तुम्हें सुना देना चाहती हूँ। परन्तु एक बात है। वह यह कि ये सब बातें तुम किसीसे, यहाँ तक कि सुभद्रसे भी न कहनेकी प्रतिज्ञा करो तो मैं अपना सिलसिला आगे चलाऊँ।" यह कह कर रत्नमालाने मणिमालिनीकी ओर देखा। उससे मणिमालिनी बहुत शर्मिन्दा हुई। उसके दोनों गाल लाल हो उठे। वह हाथ जोड़ कर गद्गद् कंठसे कुछ कहना चाहती थी कि रत्नमाला बीचहीमें बोल उठी—"अच्छा, अच्छा, मैं समझ गई। अब तुम्हें बोलनेके लिए कष्ट उठानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम यही बात कहना चाहती हो न कि एक बार स्त्रियोंकी खास बात पतिसे कह देनेके कारण मैं उसका फल भोग चुकी हूँ।" अच्छा तो सुनो—

"पहले यही बात सुनो कि मैंने ऐसा बड़ा साहस क्यों किया? क्योंकि जितनी प्रबल उत्कण्ठा तुम्हें इस बातके सुननेकी है उतनी ही मुझे उसके कहनेकी भी है। शायद तुमने सुना होगा कि पहले कई कारणोंसे मुझे ब्याह करनेकी इच्छा बिल्कुल न थी। उस समय मेरे हृद-

यकी यही उच्चतम भावना थी कि जीवनपर्यन्त कुमारी रह कर दीन-दुखी और अनाथोंकी सेवा-शुश्रूषा करूँ। पिताजीने मुझे बहुत कुछ समझाया; परन्तु मैंने उस पर कुछ ध्यान न दिया। मैं अपने ही विचारोंमें मस्त रही। मेरा यह हठ पिताजीको बहुत बुरा लगा; परन्तु इससे मुझे क्या? उनके लिए क्या मैं अपने कल्याण-मार्गको छोड़ बैठूँ? यह विचार कर मैं ब्याह न करनेके लिए आदिसे अन्तपर्यंत दृढ़ बनी रही। तब पिताजीने सोचा कि इस तरह तो यह समझनेकी नहीं; परन्तु कदाचित् अनेक तीर्थोंमें घूमने, वहाँ नाना स्वभावके लोगोंसे मिलने-जुलने और अनेक सुन्दर शहरों—उनके वैभवोंके देखनेसे इसे गार्हस्थ्य जीवनकी सुन्दरता जान पड़े और यह उस पर मोहित होकर संसार-धर्म स्वीकार करनेको तैयार हो जाय। यह विचार कर पिताजी मुझे साथ लेकर तीर्थयात्राके लिए निकले। यहाँ आये बाद मुझे भी जान पड़ा कि आश्चर्य नहीं कि पिताजीकी वह इच्छा यहाँ पूरी हो जाय। कारण मेरा संकल्प मुझे भी शिथिलसा होता जान पड़ता है। यह बात जानने योग्य है कि मैं क्यों अपने संकल्पसे च्युत हुई? कलके दिन इसी घरमें एक ऐसी घटना बीत चुकी है, कि उससे मुझे यह संकल्प दृढ़ करना पड़ा कि पिताजीकी इच्छा पूरी करनेके लिए ब्याह तो क्या, परन्तु इससे अधिक जोखमका काम भी मैं अपने सिर पर उठा लेनेके लिए सदा तैयार रहूँगी। कारण माता-पिताके मानसिक तथा शारीरिक कष्टोंको दूर करना सन्तानका पहला कर्त्तव्य है। यह शिक्षा कल-दिन पहले पहल मुझे इसी घरसे मिली है।

मणिमालिनीने बड़ी उत्सुकताके साथ चुपचाप ये सब बातें सुनीं। रत्नमाला इतना कह कर थोड़ी देरके लिए चुप हो गई। जान पड़ा वह किसी बातको याद करनेके लिए गहरे विचारमें पड़ गई है। थोड़ी देर बाद उसने फिर कहना शुरू किया। वह बोली—

"कल रातको जब तुम्हारे जेठ रत्नभद्रजी घर पर आये तब उनका

चेहरा दिन भरके कठोर परिश्रमके कारण बड़ा ही खेद-खिन्न हो रहा था—भूख-प्यासके मारे सूख कर वह बहुत ही उतर गया था। उद्वेगके कारण उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया था। आनेके साथ ही उन्होंने पीनेके लिए थोड़ासा ठंडा पानी माँगा। उनकी सती-साध्वी स्त्रीने उसी समय एक कटोरीमें थोड़ासा शरबत बना कर ला दिया। रत्नभद्र उस कटोरीको मुँहके पास ले ही गये थे कि सहसा उन्हें कोई बात याद आ गई। उन्होंने अपनी स्त्रीसे पूछा— "पिताजीने भोजन कर लिया या नहीं?" उत्तरमें तुम्हारी जेठानी लीलाने कहा—"नहीं।" रत्नभद्रने यह जान कर, कि इतनी देर हो जाने पर भी अब तक पिताजी नहीं आये, उस कटोरीको जमीन पर रख दिया। उस समय उनकी आवाजसे यह स्पष्ट जान पड़ता था कि प्यासके मारे उनका गला सूखा जा रहा है; परन्तु तब भी उन्होंने पिताजीके खाये-पिये बिना स्वयं कुछ खाना पीना उचित नहीं समझा। उस समय मैं वहीं पर थी। पिताजीके लिए स्वार्थ-त्याग करनेका पवित्र पाठ मैंने उसी समय सीखा। मन-ही-मन मैंने रत्न-भद्रको गुरु मान नमस्कार किया तथा प्रतिज्ञा की कि अबसे मैं पिताजीकी प्रत्येक आज्ञा और सूचनाको निःसंकोच होकर स्वीकार कर लिया करूँगी। यदि वे मुझे ब्याह करनेको कहेंगे, तो उनका मान रखनेके लिए अपना सबसे पहला कर्त्तव्य समझ कर उसे भी मैं स्वीकार कर लूँगी। यह दृढ़ निश्चय करके ही मैं उस कमरेसे बाहर हुई थी। उस समय भी मेरे मगजमें इसी विषयके विचार घुल रहे थे। मैंने सोचा—यदि पिताजी ब्याहके लिए कहें तो ब्याह तो अवश्य ही कर लेना उचित है; परन्तु ब्याहकी जो अन्धपरम्परा इस समय प्रचालित है, उसके फंदेमें न पड़ कर किसी योग्य सहधर्मी पात्रके गलेमें वरमाला डालना अच्छा है। इन विचारोंको करती हुई जब मैं अपने कमरेकी ओर लौट रही थी,

उसी समय मैंने तुम्हारे स्वामी और ससुरको ऊपर चढ़ते हुए देखे । जान पड़ा कि वे मणिभद्रको सबके ऊपरकी मंजिलकी कोठरीमें बन्द करनेको लेजा रहे हैं । इस घरमें आकर मणिभद्रको मैंने यही पहले पहल देखा था । मणिभद्रका विषण्ण मुँह देख कर मेरे हृदयको बहुत कष्ट पहुँचा । बहिन, अब और ज्यादा क्या कहूँ, उस समय मेरे मनमें यह भी भावना उत्पन्न हुई कि मणिभद्रके साथ मेरा ब्याह हो जाय तो हम दोनोंको बहुत सुख हो । परन्तु साथ ही मुझे जान पड़ा कि मणिभद्र इस समय जिस अवस्थामें आ फँसे हैं उस अवस्थामें मेरा उनके साथ ब्याह होना संभव नहीं । ”

एक ओर हमारे समाजकी यह दशा और दूसरी ओर मैंने अपनी आँखोंसे यह भी देखा कि मणिभद्रने जो वीरप्रभुका सत्कार कर अपना जीवन सार्थक किया तथा उनके जुलूसमें अधिक भाग लिया उसके लिए उस पर ऐसा अमानुषिक अत्याचार किया गया । इस अत्याचारके कारण मणिभद्रको यदि कुछ अधिक देर तक बन्द रहना पड़ा तो यह निश्चित है कि अपराध न करने पर भी या तो उसे क्षमा माँगनी पड़ेगी या क्षमाके लिए बाध्य होना पड़ेगा । मेरा विश्वास है कि बिना अपराधके समाजसे क्षमा माँगना बड़ी लज्जा-जनक बात है । सरल-हृदय मणिभद्र बिना कारण समाजसे क्षमा-प्रार्थना करे और फिर मैं उसके साथ ब्याह करूँ तो मेरे तथा मेरे कुटुम्बके सिर पर कलंक लगे बिना नहीं रह सकता । इस कलंकसे मेरा और मणिभद्रका उद्धार करनेके लिए मुझे चाहे जैसा साहस करना पड़े, मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि मैं उसे निर्भय होकर करूँगी । बहिन, इसके बाद जो जो बातें हुई हैं वे सब तुम पर विदित ही हैं । यही मेरी आत्म-कथा है । बहिन, सचमुच ही मैंने बड़ा भारी साहस किया है । मुझ जैसी एक सामान्य स्त्रीके द्वारा जो काम कभी होना संभव नहीं था वही काम मैंने आवेगमें आकर करडाला है । इसका परि-

णाम क्या होगा, इस पर मैंने कुछ नहीं सोचा है । कारण अपने पवित्र धर्मकी यह मुख्य आज्ञा है कि किये हुए कर्मोंका फल चाहे जैसा हो, उसे भोगनेको सदा तैयार रहना चाहिए। उसी भाँति मैं भी अपने कर्मका फल भोगनेके लिए तैयार हूँ ।"

अब तक मणिमालिनी रत्नमालाके मुँहकी ओर एकटक देख रही थी और बड़ी उत्सुकताके साथ उसकी सब बातोंको सुन रही थी । रत्नमा-लाकी आत्म-कथा पूरी होनेके बाद ही मणिमालिनीने कहा—"बहिन रत्न-माला, सच बात तो यह है कि हम लोगोंका भाग्य ही खराब है । यदि ऐसा न होता कभी ऐसा प्रसंग आता! श्रावस्तीके प्रायः सब लोग जिनकी भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, पवित्र पुरुष जिनके चरणोंमें आत्म-समर्पण कर कृतार्थ होते हैं, नहीं जान पड़ता कि उन वीरप्रभुके सामने विरोधी बन कर खड़े रहनेकी मेरे ससुर और उनके पक्षके लोगोंको क्यों ऐसी दुर्बुद्धि सूझी ! सचमुच बहिन, हमारा सर्वनाश होना चाहता है । हमारा सुखमय संसार आज छिन्न भिन्न हो गया है । और ऐसे संकटके समय प्राणनाथ भी..." इतना कहते कहते मणिमालिनीकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसके सुन्दर मुँह पर विषादकी रेखा दिखाई दी । उसका गला भर आया । बड़ी कठिनतासे वह आगे बोली—"मेरे निष्कलंक स्वामी, मेरे जीवनके एक मात्र आराध्य देवता—मेरे जीवन-सर्वस्व भी मुझे त्याग कर चले गये! उनके चले जानेसे मेरे हृदयमें जो दारुण वेदना हो रही है, बहिन, वह शब्दों द्वारा नहीं कही सकती । जान पड़ता है बहुधा करके वे संसार छोड़ कर ही चले गये हैं । बहिन रत्नमाला, मुझ अभागिनीका तो आज सर्वस्व लुट गया । मुझे यह भी नहीं सूझ पड़ता कि मैं अब क्या करूँ! यह उत्कण्ठा —व्याकुलता क्षणभर भी विश्राम नहीं लेने देती कि मैं अब स्वामीके दर्शन कर सकूँगी या नहीं ? नहीं जान पड़ता कि किन कर्मोंका फल मैं इस भवमें भोग रही हूँ । " मणिमालिनीने अपने हृदयके बाँधको एकदम

छोड़ दिया। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा वह चली। रत्नमालासे भी अब चुप न रहा गया—हृदयके वेगको वह न रोक सकी। वहिनकी भाँति प्यार करनेवाली मणिमालिनीका कष्ट देख कर वह भी रो पड़ी। आखिर रत्नमालाने बड़ी कठिनतासे हृदय थाम कर मणिमालिनीके आँसू पोंछे और कहा—"वहिन, कर्मोंके खेलोंको जान लेना हम जैसी बालिकाओंके लिए सहज नहीं है। ऐसे समयमें तो धैर्य और हिम्मत रख कर सब कुछ सहलेना ही हमारा कर्त्तव्य है। उसमें भी स्त्रियोंके लिए तो सहन करनेके सिवा और कोई गंभीर धर्म-कर्त्तव्य ही नहीं है। सहन करना ही स्त्री-जीवनका मूल उद्देश्य जान पड़ता है। सहनशीलता ही स्त्री-जातिका श्रेष्ठ भूषण है। स्त्री-जातिके लिए विदुषी न होना जितना लज्जा-जनक नहीं उतना लज्जा-जनक उनका सहनशील न होना है। ऐसी स्त्रियाँ अपने कुटुम्ब और संसारके लिए भाररूप हैं। जन्मसे मृत्युपर्यन्त नाना प्रकारके कष्टों और आपत्तियोंको सहन करनेमें ही स्त्री-जातिका गौरव समाया हुआ है। जो कुछ हो चुका उसके लिए घबराना और हाय-बाप करना अब निरर्थक है। मुझे जान पड़ता है कि इन सब बातोंका अन्तिम परिणाम सुखकर ही होगा। पवित्र जिन-शासन और वीरप्रभुके प्रति हमें श्रद्धा रखनी चाहिए। शासन-देवता सबका कल्याण करेंगे।

रत्नमाला इस प्रकार मणिमालिनीको धीरज बँधा रही थी कि इतनेमें समन्तभद्रके घर बाहर बड़ा भयंकर कोलाहल इन्हें सुनाई दिया। ये दोनों उठ कर अपनी कोठरीकी खिड़कीके पास जाकर इस बातके देखनेको खड़ी हो गईं कि वह कोलाकल किस लिए हो रहा है।

नौवाँ परिच्छेद ।

सुभद्रने क्या किया ?

श्रावस्तीके बाहर थोड़ी ही दूर पर एक सुन्दर बाग है । लोग उसे जेतवन कहते हैं । उसका जेतवन नाम इस लिए पड़ा कि श्रावस्तीके राजकुमार जेतसिंहने अपनी सौंदर्य-लालसाको परितृप्त करनेके लिए बड़े परिश्रम और धन-व्ययके साथ उसे तैयार करवाया है । बागके ठीक बीचों बीच एक कमल-मण्डित सुविशाल निर्मल जलका भरा सरोवर है । सरोवरके एक किनारे इन्द्र-महल-सदृश एक बहुत सुन्दर प्रासाद बना हुआ है । इसी भव्य प्रासादमें वीरप्रभु अपने शिष्य-समूहके साथ ठहरे हुए हैं । प्रभुके आनेसे आज यह बाग तीर्थरूप बन गया है ।

प्रभुके आगमन-समाचार सुन कर धनदत्त सेठ तुरंत राजकुमार जेतसिंहके पास गये और उनसे उनने कहा "मेरी इच्छा आपके इस बागके मोल ले लेनेकी है । कृपा करके आप जितना कुछ मूल्य लेना चाहें वह लेकर बाग मुझे दे दीजिए ।" राजकुमार जेतसिंहने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर और अपनी इच्छानुसार उसका मूल्य लेकर वह बाग धनदत्तके सपुर्द कर दिया । धनदत्तने इस सारे बाग और प्रासादको जैनसंघके अर्थ दान कर वीरप्रभुको शिष्य-जनसहित यहाँ ठहरानेका प्रबन्ध किया है ।

मणिभद्र भी इस समय यहीं पर है । उसने निश्चय किया है कि वीर-प्रभु दीक्षा प्रदान करनेकी सम्मति दें तो मैं इसी समय दीक्षा लेकर मुनि बन जाऊँ । प्रभुके प्रत्येक उपदेशने शरद-ऋतुकी चाँदनीकी भाँति उसके हृदयमें पैठ कर उसकी गहराईकी तह तक स्निग्ध प्रकाश विस्तृत कर दिया है । पहले उसके मुँह पर जो सदा विषादकी छाया फैली रहती थी वह अब नष्ट हो गई है । और उसकी जगह उसके शान्त-स्निग्ध-

आयत लोचनोंमें एक बहुत ही मोहक मधुर भाव खिल रहा है। उसके विषयमें अब यह कहना अनुचित न होगा कि वह अपनी, अपने संसारकी और अपने गत जीवनकी चिन्ताको सर्वथा ही भूल गया है। कारण अब उसकी सब दुर्भावनायें शान्त हो गई हैं। वह प्रभुके द्वारा विश्वव्यापी मैत्री और वैराग्य-संबन्धी सुधा-सदृश उपदेश सुन कर संसारका स्वरूप और जीवनके कर्त्तव्य-संबन्धके विचारोंमें ही निरन्तर मग्न रहता है। यद्यपि अभी वह मुनि-पद लाभके लिए भाग्यशाली नहीं हुआ है तो भी अकारण संसार-बंधु वीरप्रभुका सब जीवोंके प्रति निर्दोष व्यवहार और उनकी तेजोमयी चारित्र-मूर्त्तिको अपनी आँखोंके सामने आदर्श रख कर धीरे धीरे इतना शान्त और विचारशील बन गया है कि उसे उपचारसे मुनि कहनेमें कुछ अनुचित न होगा। वह इस समय जेतवनकी किसी एक छोटीसी कोठड़ीमें प्राय: रहता है। वीरप्रभुके पास जाकर उसने कई बार दीक्षाके लिए प्रार्थना की; परन्तु प्रभुने अब तक उसे दीक्षा लेनेकी आज्ञा प्रदान नहीं की। मणिभद्र दीक्षाके लिए खूब तैयारी कर रहा है—शरीर-मन-आत्माको उसके योग्य बना रहा है। वर्तमान अवस्थामें ही वह दृढ़ चित्तसे मुनिजीवन-निर्वाहका अभ्यास कर रहा है।

वह नित्य भगवानके पवित्र दर्शन करता है, और भगवानके मुँहसे सुधा-सम पवित्र उपदेश सुन कर आत्माको कृतार्थ करता है; इतने पर भी उसे जो मुनि-पदका लाभ नहीं होता उससे उसके हृदयमें कुछ खिन्नता बनी रहती है। वह इस लिए दीक्षाकी जल्दी नहीं कर रहा है कि दीक्षित होने पर उसे प्रभुकी पवित्र वाणी और सेवाका जो विशेष अधिक लाभ मिलता वह अब नहीं मिल रहा है; किन्तु इस लिए जल्दी कर रहा है कि शायद इस दशामें सगे-सम्बन्धियोंके दबाव या आग्रहसे कहीं उसे प्रभुका पवित्र समागम न छोड़ देना पड़े। और ऐसा हुआ तो उसे बहुत ही दुःख होगा। इसी कारण वह जितनी जल्दी बन सके उतनी जल्दी दीक्षा देदेनेकी प्रभुसे प्रार्थना करता रहता है। परन्तु भगवानने अब

तक भी उसे मुनि बना लेनेकी स्वीकारता नहीं दी। प्रभुने क्यों तो अब तक इस बातकी आज्ञा नहीं दी और अब भी वे क्यों नहीं देते इस बातको प्रभुके सिवा कोई दूसरा नहीं जानता। मणिभद्रकी आतुरता प्रति समय बढ़ती जाती है। कोई आकस्मिक विपत्ति उसे प्रभुकी शीतल छायामेंसे हटा कर संसारकी ज्वालामें न डालदे, इसके लिए वह सदा चिन्तितसा रहा करता है। उसने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि उसके लिए अब प्रभुके सिवा इस लोक और परलोकमें कोई दूसरा शरण नहीं है; और इसी लिए वह भी अपने जीवनको प्रभुमय बनानेकी भर सक कोशिश कर रहा है।

जेतवनमें सब जगह शान्तिका साम्राज्य है। वहाँ संसार-सम्बन्धी कोई प्रकारकी गड़बड़ या कोलाहल नहीं है। सब मुनिगण और भद्र, शिष्य-मण्डली अपने अपने ध्यान-कर्त्तव्य-आत्मविचारमें लीन है। देव-चरित मुनियोंके मुख-कमल पर शान्ति, क्षमा और दयाकी सुमधुर रेखायें फैल रही हैं। मणिभद्र भी एक जनशून्य कोठड़ीमें बैठा बैठा प्रभुने जो कलके दिन जीव-अजीव और पुण्य-पापका स्वरूप कहा था उसे एकाग्र-मन होकर विचार रहा है। इतनेमें किसीने मणिभद्रकी कोठड़ीके किवाड़ खटखटा कर उसे पुकारा। पहले तो मणिभद्रने विचार-मग्न होनेके कारण उस आवाजको सुन ही न पाया; परन्तु जब बार बार उसे पुकारा गया तब एकदम उसकी विचार-समाधि टूटी। वह आवाज उसे परिचि-तसी जान पड़ी। उसे ऐसी जगह किसी परिचित व्यक्तिकी आवाज सुनाई पड़नेकी बिल्कुल संभावना न थी। उसने तुरंत उठ कर किवाड़ खोल दिये। कुछ न कह कर बड़े धीरेसे सुभद्र कोठड़ीके भीतर चला आया। उस समय सुभद्रका मुँह बहुत उदास था। उसकी आँखोंमें आँसू छलक रहे थे। उसका सारा शरीर खेदखिन्न हो रहा था। मणिभद्र अपने बड़े भाईकी यह दशा देख कर थर्रा उठा। उसने चुपचाप भाईके पास आकर नीचा सिर किये उसके पाँवोंको छूकर प्रणाम किया। उस समय कोई नज़र गढ़ा कर देखता तो उसे मणिभद्रकी भी आँखोंमें आँसू बिना दिखे न रहते।

दसवाँ परिच्छेद।

दोनों भाई।

सुभद्र मणिभद्रके मुँहकी ओर टकटकी लगाये देख रहा है। उसके मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकलता। मणिभद्रकी भी यही दशा है। उसका गला भर आया। वह नीचा मुँह किये सुभद्रके पाँवों पर अश्रुवर्षा कर रहा है। दोनों भाई थोड़ी देर तक इस हालतमें चुपचाप एक दूसरेको देखते रहे। इस प्रकार जब मणिभद्रका हृदय कुछ हलका हुआ तब उसने स्नेहपूर्ण दृष्टिसे भाईकी ओर देख कर एक लंबी साँस ली और पूछा—"बड़े भैया, पिताजी तो प्रसन्न हैं न?" सुभद्र अब तक खड़ा हुआ था, पर अब मणिभद्रका हाथ पकड़ कर बैठ गया। उसने एक बार आकाशकी ओर शून्य दृष्टिसे निहार कर कहा—"भैया, जब तुम हम सबको छोड़ कर ही चले आये तब फिर पिताजीके कुशल समाचार किस लिए पूछते हो?"

मणिभद्रने कहा—"क्या सचमुच मैं तुम सबको छोड़ कर चला आया हूँ! मेरे मनकी इस समय कैसी स्थिति है भैया, इस बातको वीरप्रभुके सिवा कोई नहीं जान सकता। हृदयके मोह-बन्धनको मैं अब तक भी नहीं तोड़ सका हूँ। संसारमें रह कर इस बन्धनको ढीला करना बहुत ही कठिन काम है। और इसी लिए मैं मुनि-पदकी योग्यता लाभ करनेका हृदयसे प्रयत्न कर रहा हूँ।" यह कहते कहते मणिभद्रकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने रोते रोते अत्यंत धीमी और कातर आवाजसे कहा—"बड़े भैया, जल्दी कहो कि पिताजी अच्छे तो हैं न? मैं जिस रातको घर छोड़ कर यहाँ आया, उस रातको मात्र एक बार मैंने उनके दर्शन किये थे। उन अन्तिम दर्शनके समय उनके चेहरे परसे

उनका मन बहुत उद्विग्न जान पड़ता था । पिताजी जब मुझे पकड़ कर ऊपर लेजा रहे थे तब मैंने उसी समय इस बातको अच्छी तरह जान लिया था कि दुर्भावनाकी चिनगारियाँ उनके मुँह परकी विषाद-पूर्ण रेखा, शरीरकी कृशता तथा आँखोंकी तीव्रताके द्वारा बाहर निकलनेका भर सक यत्न कर रही हैं । भैया, कहो तो पिताजीके मन और शरीरमें इतना परिवर्तन हो जानेका क्या कारण है ? वे उस दिन इतने अधिक क्यों उत्तेजित हो गये थे ? मैंने पिताजीकी ऐसी भयंकरता कभी न देखी थी । इस कारण कृपा करके बतलाओ कि पिताजी इस समय कैसे हैं ? ”

सुभद्र मणिभद्रके सरल मुँहकी ओर देखता रह गया । उसकी सीधी-सरल बातोंको सुन कर वह क्षण भरके लिए मुग्ध हो गया । इसके बाद उसने कहा—“ मणिभद्र, क्या सचमुच तुझे इस बातकी खबर नहीं कि पिताजीकी ऐसी स्थिति क्यों हुई ? क्या तू यह नहीं जानता कि पिताजी तेरे ही कारण इतने उत्तेजित हुए हैं ? और तेरे ही कारण हम सबको इतना तिरस्कार—अपमान सहना पड़ा है ? आश्चर्य है कि तुझे इन बातोंकी रत्तीभर भी खबर नहीं !

इस कहनेका मणिभद्रके हृदय पर बहुत गहरा असर पड़ा । उसने एक लंबी साँस ली । जान पड़ा कि उसके विचार-समुद्रमें एक बड़ा भारी तूफान आ रहा है । आश्चर्यसे आँखें फाड़ कर उसने पूछा—“ बड़े भैया, यह बात तो अब तक मुझसे किसीने भी नहीं कही कि मेरे कारण तुम सबको बड़ी भारी विडम्बना भोगनी पड़ी है और मेरे ही कारण पिताजी इतनी बुरी दुर्दशामें फँसे हैं । सचमुच भैया, मैं बहुत ही बे-समझ हूँ; पर तुमने मुझे इस दुःखपूर्ण घटनाके समाचार क्यों नहीं दिये ?

अच्छा बड़े भैया, बतलाओ, ऐसा मैंने क्या अपराध किया है ? बतलाओ, मुझ जैसे कुपुत्रके किस दोषके कारण पिताजीको ऐसा संकट उठाना पड़ा ? बतलाओ, मेरे ऐसे किस दुष्कर्मके कारण पिताजी इतने कृश तथा

शोकाकुल हुए? जान पड़ता है इन सब बातोंको सुननेके लिए ही, मैं अब तक जी रहा हूँ।"

सुभद्रने कहा—"यह क्या माणिभद्र! क्या तुझे इस बातकी बिल्कुल खबर नहीं है कि अपने घर पर कोई एक महीनेसे जो सैकड़ों ब्राह्मण विद्वान् और धनी-मीनी सज्जन रोज आ-आ कर प्राईवेट सलाह-सम्मति और योजना किया करते थे वह सब क्या था? क्या तू यह नहीं जानता कि वहाँ दिनरात कितनी बातें-चीतें और कितनी कल्पनायें हुआ करती थीं? और न तुझे इस बातके जाननेका कभी कुतूहल ही हुआ कि ये सब पंडित लोग किस लिए आते हैं, क्यों पीछे जाते हैं और क्या बातें करते हैं? मणिभद्र, तेरी यह अज्ञानता देख कर सचमुच मुझे बड़ा अचंभा हो रहा है। इस बातकी भी तुझे खबर न हुई कि घरमें क्या हो रहा है—आश्चर्य है! इस बातका हमें तो स्वप्नमें भी खयाल न हुआ कि तू इन सब बातोंसे अजान होगा।"

सुभद्रकी बातें सुन कर मणिभद्रका सरल मुँह विषाद-पूर्ण और गंभीर बन गया। सुभद्रने मणिभद्रकी ओर देखा तो उसे इस समय भी मणिभद्रकी स्वच्छ आँखोंमें निष्कपटता दिखाई दी। मणिभद्र उसकी बातोंका क्या उत्तर देता है, इसके लिए वह अत्यन्त उत्सुक हो उठा।

मणिभद्रने पहलेकी ही भाँति सुभद्रकी ओर चकित दृष्टिसे देख कर कहा—"नहीं, बड़े भैया, मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ कि उस समय इन बातोंकी ओर मेरा बिल्कुल ही ध्यान न था। भैया, आप क्या नहीं जानते हैं कि जिस दिनसे स्नेहमयी माँ हम अभागोंको छोड़ कर स्वर्ग सिधार गई हैं उस दिनसे एक दिन भी मैंने घर बाहर पग नहीं दिया है। जिस कमरेमें उस भयंकर काल रात्रिको माँने स्नेह-पूर्ण सजल नयनोंसे मेरी ओर देखते देखते पार्थिव शरीर छोड़ा था, उसी दिनसे उसी कमरेमें बैठा बैठा मैं रो-रो कर अपने दिन पूरे किया करता था। न जाने

एक दिन क्यों एका एक मेरी इच्छा संध्या समय बाहर घूम आनेकी हुई। मैं किसीसे कुछ न कह सुन कर अकेला घरसे निकला। दरवाजेसे बाहर निकलते समय मैंने अपने घरके चबूतेर पर कुछ ब्राह्मण विद्वानों और गृहस्थोंको बड़ी घबराहटके साथ बात-चीत करते हुए देखे थे। पिताजी भी उनके बीचमें गाल पर हाथ रक्खे हुए कुछ गहरा विचार कर रहे थे। उनकी आँखोंमें भी घबराहटके चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। उनके चिन्तापूर्ण मुँहको देख कर मेरे मनमें आया कि मैं पिताजीसे पूछ कर निश्चय करूँ कि वे क्या विचार कर रहे हैं और ये सब लोग किस कारण इकट्ठे हुए हैं। पर साथ ही मैं यह सोच कर, कि ऐसे प्रतिष्ठित विद्वान् लोगोंके बीचमें जाकर कुछ पूछना उचित नहीं जान पड़ता, आगे बढ़ा। सच पूछो तो उस समय मातृ-वियोगके सिवा अन्य किसी बात या विचारके लिए मेरे मगजमें जगह ही न थी। मैं स्वयं ही अपनी चिन्ताको हृदयमें दबा कर घर बाहर हुआ था। इसके बाद जो जो घटनायें हुईं उन सबको तो तुम जानते ही हो। कारण उस दिन तुमने और पिताजीने मुझसे जब एकके बाद एक बात पूछना शुरू किया था तब मैंने अथसे इतिपर्यंत सब बातें कहदी थीं। मैंने इस बातका अब तक भी निर्णय नहीं कर पाया है कि मेरी बातोंको सुन कर क्यों तो पिताजीका मुँह उतना विषण्ण हो गया था; क्यों मेरा इतना तिरस्कार किया गया था; क्यों पिताजीकी मेरे लिए ऐसी आह निकली थी कि मैं मर गया होता तो अच्छा था; तथा यह सब कुछ होनेके बाद मुझे सबके ऊपरकी मंजिलकी कोठड़ीमें उन्होंने क्यों बन्द किया था। जिस दिन वीरप्रभु जेतवनमें आये उस दिन मैं प्रभुके पास ही बैठा हुआ था। उस समय धनंजय सेठ भी वहीं बैठे हुए थे। उनकी मुझ पर नजर पड़ी कि उन्होंने पिताजीका नाम लेकर मेरी ओर उँगली दिखा कुछ कहना चाहा, कि इतनेमें धनदत्त सेठने भगवानकी ओर दृष्टि फेर कर उन्हें बोलनेसे रोक दिया। धनदत्तने उनसे कहा भी—

"इस समय ऐसी फिजूल बातोंमें व्यर्थ समय गँवाना उचित नहीं है। भगवान् अपने पवित्र मुँहसे पुनर्जन्म और कर्म-सम्बन्ध पर व्याख्यान शुरू करनेवाले हैं और जिनके वचनामृतका पान करनेके लिए सारी श्रावस्तीके भव्यगण उत्सुक हो रहे हैं उसमें आप क्यों विघ्न डालना चाहते हैं। आपको जो कुछ बातें करनी हों उन्हें पीछेसे कीजिएगा।" इसके बाद धनंजय भी चुप हो रहे। धनदत्तकी यह सम्मति मुझे बहुत अच्छी जान पड़ी; परन्तु साथ ही इस बातके लिए मेरी बड़ी उत्कण्ठा बढ़ गई कि धनंजय सेठ मेरे सम्बन्धमें क्या बातें करना चाहते थे। मेरी इच्छा हुई कि मैं उनसे सब बातें पूछूँ; परन्तु उस समय मैंने कुछ पूछना उचित नहीं समझा। मैं यह सोच कर चुप रहा गया, कि प्रभुका उपदेश समाप्त हुए बाद जो कुछ पूछना है वह पूछूँगा। परन्तु उस दिन प्रभुका उपदेश इतना प्रभावशाली, मधुर और तत्त्वपूर्ण हुआ कि उसे सुन कर मैं बाह्य जगत्की सुधि ही भूल गया। आत्माके साथ कर्मोंका बन्ध किस तरह होता है, वे प्राणियोंको संसारमें किस तरह कहाँ कहाँ भ्रमण कराते हैं, इत्यादि बातोंका प्रभुने इतना अच्छा खुलासा स्वरूप कहा कि मैं तो दिङ्मूढ़ ही बन गया—मैं कहाँ हूँ, कौन हूँ और मुझे कहाँ जाना है, इन बातोंका मुझे कुछ भी भान न रहा। जब मेरी विचार-समाधि भंग हुई तब मुझे जान पड़ा कि जेतवनके इतने बड़े सभामण्डपमें केवल मैं ही अकेला बैठा हुआ हूँ। वीरप्रभु उपदेश समाप्त कर अपने शिष्योंके साथ वहाँसे कब और कहाँ चले गये इस बातका मुझे कुछ ध्यान नहीं रहा। प्रभुके उपदेश समयकी वह गंभीर-मधुर कोमल ध्वनि तब भी मेरे कानोंमें गूँज रही थी। जब मैं अच्छी तरह सचेत हो गया तब मुझे एक बार अपने घरकी बातोंकी याद आई। उस समय न जाने किस लिए विना ही कारण मेरा हृदय काँप उठा। मेरी आँखोंके सामने एक ऐसा अस्पष्ट दृश्य दिखाई दिया कि अपने घर या कुटुम्ब पर कोई बड़ी भारी विपत्ति आकर गिरी है। कई बार मनमें आया

कि घर जाकर एक बार सबके कुशल-समाचार पूछ आऊँ, पर पाँव उस ओर उठता ही न था। मैं घर गया भी और शायद पहलेकी ही भाँति तुम सब मिल कर मुझे फ़िरसे कोठड़ीमें बन्द कर दो, तो मेरी क्या दशा हो ! और तो कोई बुरी दशा होनेका डर न था; किन्तु इस बातका डर अवश्य था कि कहीं प्रभुके पास आने और उनका सुमधुर पवित्र उपदेश सुननेसे मैं वंचित न हो जाऊँ ! इसी एक भयके कारण मैं घर पर न आ सका। प्रभुके दर्शन और उपदेश बिना मेरी क्या दशा होगी इस बातकी कल्पना कर मेरा सिर घूम उठता है। प्रभुके वियोगमें मुझे सब ओर सिवा अन्धकारके और कुछ नहीं दिखाई पड़ता। अस्तु, इन सब बातोंके कहनेकी इस समय आवश्यकता नहीं। मैं तुमसे इस समय यही बात सुनना चाहता हूँ कि घरकी क्या हालत है, पिताजी कैसे हैं और मुझसे क्या अपराध बन पड़ा है ?"

मणिभद्रकी बातें सुन कर सुभद्रका सब सन्देह-तिमिर नष्ट हो गया। उसकी आँखोंसे प्रसन्नता तथा सन्तोषकी स्निग्ध किरणें निकल कर स्वच्छ चाँदनीकी भाँति मणिभद्रका अभिषेक करने लगीं। इसके बाद सुभद्रने मणिभद्रसे बीती हुई सब बातें सिलसिले वार कह सुनाईं। सुभद्र जब—मणिभद्रके भाग जाने पर ब्राह्मणों द्वारा की गई भयंकर प्रतिज्ञा, वीर-प्रभुका अपमान और तिरस्कार कर उन्हें श्रावस्तीसे निकाल देनेका प्रस्ताव, नाना तरहके षड्यंत्र; श्रावस्तीसे जैनधर्म और जैनसंघका नाम तक उठा देनेकी योजना, इन सब बातोंमें शामिल होनेके लिए बूढ़े धर्मात्मा समन्तभद्रकी आन्तरिक इच्छा न रहते हुए भी ब्राह्मणोंके दबाव और भयके कारण उन पर आई हुई विपत्ति—इत्यादि सब बातें कह रहा था तब उसकी आवाजसे यह भी स्पष्ट जान पड़ता था कि वह स्वयं भी उन बातोंसे लज्जित हो रहा है। इसके बाद उसने, गत रातके रत्नमालाके प्रति किये गये अपने दुराचारका सब हाल भी बिना किसी कपट भावके

मणिभद्रको सुना दिया। अन्तमें उसने हृदयके साथ जो आत्म-प्रतिज्ञा की थी वह भी मणिभद्र पर प्रगट करदी। उसने कहा—"भैया, मैंने अपने भयंकर पापका प्रायश्चित्त करनेके लिए स्थिर किया है कि वीरप्रभुकी शरण जाकर काम-क्रोधादिकी भीषण ज्वालाओंसे धधक रहे इस संसार-वनसे निकल भागनेके लिए, धर्म और संघकी सेवार्थ मैं अपने प्राणोंकी आहुति देकर आत्माको पवित्र करूँ।" यह कहते हुए सुभद्रका गला रुँध गया। आँखोंसे दर दर आँसुओंकी झड़ी लग गई। मणिभद्र भी अपने बड़े भाईकी यह दशा देख अधिक देर शान्त न रह सका। उसकी आँखोंमें भी आँसू भर आये। जिस समय ये दोनों भाई इस प्रकार अश्रुजलसे हृदयकी मलिनताको धो रहे थे उस समय वहाँ ऐसी कोई अन्य व्यक्ति मौजूद न थी जो उन्हें धीरज बँधाती। उस समयकी प्रचंड अग्निवर्षाको देख कर यह जान पड़ता था कि प्रकृति इन दोनों बन्धुओंके रोनेमें खुश है। पक्षि-गण भी इस भयसे बड़े शान्तसे बैठे हुए थे कि कहीं उनके चह-चहानेसे उस मधुर रोनेमें कोई विघ्न न आ जाय। आस-पास किसीके भी आने-जानेकी आवाज सुनाई न पड़ती थी। ग्रीष्म समयके दो-पहरके सूर्यकी प्रचंड गरमीके मारे मनुष्य-पशु-पक्षी आदि कोई भी बाहर निकलनेकी हिम्मत न कर सकते थे! मणिभद्र और सुभद्रको बाह्य प्रकृतिका ध्यान होने पर भी वे हृदयमें एक अत्यंत तीव्र—प्रखर वेदनाका अनुभव कर रहे थे। वास्तवमें जिसके हृदयमें पश्चात्तापकी प्रचंड आग धधक रही हो उस पर बाह्य प्रकृतिके प्रखरसे प्रखर तापका भी कुछ असर नहीं हो सकता। अच्छा पाठक, इन दोनों भाइयोंको खूब रोलेने दीजिए। हम इनके रोनेको बन्द करनेके लिए खुश नहीं हैं। कारण पश्चात्तापका रोना भी पुण्यमय होता है। फिर पुण्य-प्रवृत्तिमें विघ्न डालनेसे लाभ!

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

विरोध।

आज बूढ़े समन्तभद्रका सुखमय संसार धूलमें मिल गया है। जिस समन्तभद्रका घर सदा आनन्दित और स्वाभाविक गौरवसे उन्नत दिखाई पढ़ता था, उसी घर पर आज विषाद और विपत्तिके घनघोर बादल मँड़रा रहे हैं। जिस समन्तभद्रने यज्ञ-रक्षण, बलिदान और ब्राह्मणोंकी स्वार्थ-रक्षा-के लिए आज पर्यंत शक्तिसे बाहर यत्न किया था उसी पर शहरके बड़े बड़े विद्वान् और धनी-मानी ब्राह्मण आज क्रोधका पहाड़ ढाह रहे हैं। इन लोगोंका इस बातको सुन कर रोम रोम काँप उठा है कि समन्तभद्रके दो लड़कोंने जेतवनमें जाकर वीरप्रभुकी शरण ली है और इसके सिवा वैदिक धर्मके द्वेषी कौशाम्बी-निवासी श्रावक वसुभूतिकी लड़की रत्नमाला उन्हींके घरमें आकर ठहरी है; और वहाँ उसका बहुत आदर-सत्कार किया जाता है। आखिर उन लोगोंने यह निश्चय किया कि यदि समन्तभद्र सभाके बीचमें इस बातको स्वीकार करें कि वे अपने पुत्रोंके इस काम पर खेद प्रकाशित कर उन्हें त्याग दें और रत्नमालाको घरसे निकाल दें, तो हम लोग उनके साथ सामाजिक तथा धार्मिक सम्बन्ध रक्खें; नहीं तो धनदत्तकी भाँति उन्हें भी स्वधर्म-भ्रष्ट समझ कर सारे शहरमें ऐसी ढोंड़ी पिटवा देनी चाहिए कि उनके साथ कोई किसी प्रकारका सम्बन्ध न रक्खे। इन सब बातोंको सुन कर समन्तभद्रका हृदय विदीर्ण होने लगा। उन्हें ऐसी कभी कल्पना भी न हुई थी कि अब तककी धर्म-सेवाका यह परिणाम होगा और धर्मके लिए अपने प्यारे पुत्रोंका भी परित्याग करना पड़ेगा। उन्हें इस बातका दुःख तो बे-हद हुआ; परन्तु अन्य कोई उपाय

न होनेके कारण उनने अपने समाजकी पुत्र-त्यागकी आज्ञाको सर आँखों पर चढ़लिया। इतना होने पर भी वे रत्नमालाको सहसा घरसे निकाल देनेको तैयार न हुए। उनने उन लोगोंसे प्रार्थना थी कि जब तक कौशाम्बीसे रत्नमालाके पिता वापिस न लौट आवें तब तक एक निराश्रय लड़कीको अजाने स्थानमें मारी मारी फिरनेके लिए छोड़ देना मैं योग्य नहीं समझता। इस कारण यदि आप लोग मेरी इतनी प्रार्थना स्वीकार कर रत्नमालाके पिताको वापिस आने तक उसे मेरे यहीं रहनेमें कोई विघ्न-बाधा न डालें तो मैं आप लोगोंकी आज्ञानुसार चलनेके लिए तैयार हूँ। उन लोगोंको भी समन्तभद्रकी इस प्रार्थनामें कोई अनुचित बात न जान पड़ी। यद्यपि वे लोग क्रोध और ईर्ष्याके मारे खूब ही उत्तेजित हो उठे थे तो भी अपने मनुष्यत्वको सर्वथा न खो चुके थे। इस कारण उन्होंने फिर रत्नमालाको निराश्रय न छोड़ देनेके लिए अपनी सम्मति दे दी।

दूसरे दिन एक बड़ी भारी सभा बुलानेका निश्चय किया गया। साथ ही उन्होंने यह भी निश्चय किया कि यह सभा बड़े जोरशोर और दबदबेके साथ की जाय और इसका सारा खर्च समन्तभद्र स्वयं उठावें। इसके बाद उसी समय शहरके प्रतिष्ठित वैदिक-धर्मानुयायी लोगोंको आमंत्रण दे आनेके लिए स्वयं-सेवकोंकी एक कमेटी भी बनादी गई। बातकी बातमें ये समाचार सारे शहरमें फैल गये कि कलकी सभामें समन्तभद्र अपने अयोग्य पुत्रोंका सदाके लिए परित्याग करेंगे, और उन्हें अपने पिताकी सम्पत्तिमेंसे एक कौड़ी भी न मिलेगी; इतना ही नहीं, किन्तु उस समय समन्तभद्र और उसके कुटुम्बके लोग इस बातकी प्रतिज्ञा करेंगे कि वे सुभद्र और माणिभद्रके साथ कोई प्रकारका सम्बन्ध तक न रक्खेंगे। सारे शहरमें यह प्रगट कर दिया गया कि इस सभाके सभापतिका आसन राजकुमार जेतसिंह ग्रहण करेंगे। साथ ही उन लोगोंने यह स्थिर किया कि इस समय जो महावीर स्वामीके यहाँ ठहरनेसे श्रावस्तीके लोग दिनों दिन

वैदिक-धर्मका त्याग करते जाते हैं और अन्याय तथा अवैदिक आचरण बढ़ते जा रहे हैं इन बातोंके रोकनेके लिए महावीर और उनके शिष्योंको जबरदस्ती श्रावस्तीके बाहर कर दिये जायँ ।

समन्तभद्रके यहाँ जो जो बातें निश्चित हुईं उनका हाल धनदत्त, सुभद्र और मणिभद्रके पास भी पहुँच गया । ब्राह्मणोंका यह विरोध देख कर वे लोग बहुत डरे । दोनों भाइयोंको इस बातकी बड़ी चिन्ता हुई कि पिता-जीको इन बातोंसे कैसे बचाया जाय और इसके लिए वे बड़ी देर तक विचार भी करते रहे । सारी रात उनकी इसी बातके विचारमें बीत गई कि कलके दिन क्या करना चाहिए और यह विरोध कैसे शान्त होगा । प्रयत्न करने पर भी उन्हें शान्ति हो जानेका कोई मार्ग न सूझ पड़ा ।

सवेरा होते ही धनदत्त, सुभद्र और मणिभद्रके साथ वीरप्रभुके दर्शन करनेको जेतवनमें गये । दर्शन कर चुकनेके बाद उन्होंने वे सब बातें भगवानसे कह सुनाईं जो प्रभुके विरुद्ध सभा बुलाने और उसमें प्रस्ताव-करनेका ब्राह्मणोंने निश्चय किया था । इसके सिवा उन्होंने मणिभद्रके भाग जानेके दिनसे समन्तभद्रके यहाँ जो जो घटनायें हुईं थीं वे सब भी सिलसिले वार प्रभुसे कह दीं । अन्तमें वे भगवानसे बोले—प्रभो, अच्छा हो कि इस संकटके समय आप श्रावस्तीका ही परित्याग कर दें । यह कहते हुए उनकी आँखें आँसुओंसे डबडबा आई थीं । प्रार्थना करके वे उत्तर पानेकी इच्छासे बड़े सतृष्ण नयनोंसे प्रभुके मुँहकी ओर देखने लगे । उन्हें उस समय प्रभुके भव्य मुँह पर बिजलीके प्रकाशकी भाँति उज्ज्वल स्निग्ध-मधुर हँसीकी रेखा दिखाई दी । इस मृदु-मधुर हँसीमें आत्मनिर्भ-यताके साथ स्वाभाविक गंभीरता और प्रसन्नता भी स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी । इसके बाद प्रभुने अपनी स्वभाव-गंभीर और मनोहर वाणीमें कहा—

"इसमें डरने और किसीसे राग-द्वेष करनेका कोई कारण नहीं है। जिस समय जो होना होता है वह होकर ही रहता है। तुम्हें व्यर्थ चिन्ता कर व्याकुल न होना चाहिए। आगे चल कर तुम स्वयं यह बात देख सकोगे कि इसी श्रावस्तीका नाम जैनशासन और जैनसंघके इतिहासमें सोनेके अक्षरोंमें लिखा जायगा। यहाँ धर्मके प्रचारार्थ यह समय बहुत ही उपयोगी है।" भगवानकी इस पवित्र वाणीको सुन कर थोड़ी देरके लिए उनको यह जान पड़ा कि मानों जेतवनमें सुधाकी वर्षा हो रही है। प्रभुकी यह आत्म-निर्भरता और निर्भीकता देख कर उन लोगोंका हृदय प्रभुके प्रति भक्ति और पूज्य-बुद्धिसे अत्यन्त ही कोमल हो गया। प्रभुकी विरोधियों और भक्तोंके प्रति समभावना देख कर उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ। किसी किसीके मनमें यह भी आया कि ब्राह्मणोंके ऐसे विरोधके समय प्रभुको अधिक समय तक यहाँ रहना उचित नहीं है। उन्होंने श्रावस्ती छोड़ देनेके लिए प्रभुसे प्रार्थना करना चाहा; परन्तु भगवान इतना कह कर ही वहाँसे चले गये थे। इस कारण किसीको फिर प्रार्थना करनेका समय न मिला।

सबेरा हो चुका है। प्रातःकालका स्निग्ध वायु जेतवनके फूलोंकी सुगन्धको ग्रहण कर धीरे धीरे बह रहा है। प्रभुकी वाणी सुन कर धनदत्त, सुभद्र और मणिभद्र एक दूसरेके मुँहकी ओर देखते थोड़ी देर तक बैठे रहे; परन्तु जब उन्होंने देखा कि अब हम लोगोंकी कुछ नहीं चल सकती तब लाचार होकर वे उदास मुँह जेतवनके बाहर आ गये। उन्हें इस बातकी बड़ी चिन्ता हुई कि आज दो-पहरकी सभामें क्या होगा और न जाने कौनसी भयंकर विपत्ति प्रभु पर आकर टूटेगी! इसी विषय पर वे तर्क-वितर्क करते हुए बड़ी घबराहटके साथ आजकी सभाके अन्तिम परिणामकी राह देखने लगे।

बारहवाँ परिच्छेद ।

आग सुलगी ।

सबेरा होते ही लोगोंके झुण्डके झुण्ड समन्तभद्रके यहाँ आ-आकर इकट्ठे होने लगे। उनके घरके विशाल आँगनमें एक चबूतरा बनाया गया था। सभापतिके बैठनेको उसी पर एक रत्न-जड़े सुन्दर सिंहासनकी योजना की गई थी। धूपसे सभासदोंकी रक्षाके लिए वहाँ पर एक बड़ा भारी पाल तान दिया गया था। विद्वान और प्रतिष्ठित ब्राह्मणोंके बैठनेको सिंहासनकी दक्षिण बाजूमें बहुमूल्य आसन बिछाये गये थे और उसकी बायीं ओर अन्य धनी-मानी सज्जनोंके बैठनेका प्रबन्ध किया गया था। इस बातका पूरा खयाल रक्खा गया था कि किसीको कोई प्रकारकी तकलीफ न हो । सभा आरंभ होनेके बहुत समय पहले ही लोग वहाँ जमा होने लग गये थे। इस सब तैयारीमें कोई साढ़े दस बज गये। उस समय जिधर दृष्टि डाली जाती थी उधर यही दिखाई पड़ता था मानों आज जन-समुद्र समन्तभद्रके विशाल प्रासादको सींचनेके लिए लहरा रहा है। प्रासादके आँगनमें तथा बाहर जो भयंकर कोलाहल हो रहा था उससे आज सारी श्रावस्ती गूँज उठी थी। जिधर देखो उधर ही लोगोंका बे-हद जमघट्ट और शोर हो रहा था। बड़े बड़े घरोंकी स्त्रियाँ भी आजकी सभामें उपस्थित होनेके लिए समन्तभद्रके अन्तःपुरमें आकर बैठी थीं। आज श्रावस्तीकी इस अनुपम सौन्दर्य-राशिने समन्तभद्रके अन्तःपुरको जो भूषित किया उससे इस सभाकी एक अपूर्व ही शोभा हो गई। उस समय झरोखों और छतकी ओर दृष्टि देनेसे यह जान पड़ता था कि उन

स्वर्गीय सुन्दरियोंके रत्नालंकारकी उज्ज्वल कान्तिसे प्रकाशित मुँह पुष्प-पराग युक्त कमलोंकी सुन्दरताको लज्जित कर रहे हैं।

ठीक समय पर श्रावस्तीके राजकुमार जेतसिंह अपने कुछ प्रधान राज-कर्मचारियों और शहरके प्रतिष्ठित पुरुषोंके साथ सभा-मण्डपमें आये। समन्तभद्रने अपने बड़े पुत्र रत्नभद्रका हाथ पकड़े हुए उद्वेग-पूर्ण हृदयसे उनका स्वागत किया। इस समय समन्तभद्रके मुँह पर विषादकी रेखा स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। उसे उन्होंने कृत्रिम हँसीमें छिपा देना चाहा; परन्तु वह न छिप सकी। उस हँसीमें भी उनके हृदयकी वह विषादपूर्ण कालिमा प्रगट हो रही थी। राजकुमारका सत्कार करते समय उनका हृदय बड़े जोरसे धड़क रहा था। अपने प्यारे पुत्रोंको सदाके लिए परित्याग करनेके कारण उनका हृदय टूटा जा रहा था। उन्हें इस बातका स्वप्नमें भी खयाल न था कि इस बूढ़ी अवस्थामें धर्मके लिए इतना असह्य कष्ट सहन करना पड़ेगा। अपना पूर्व प्रभाव और अधिकार सत्ताका स्मरण कर उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। लोगोंने उन आँसुओंको आनन्दाश्रु समझ समन्तभद्रका आदर किया। यह देख समन्तभद्रने भी आँसू पोंछ कर कृत्रिम हँसीसे उन लोगोंको खुश किया।

राजकुमार धीरे धीरे सिंहद्वार लाँघ कर अपने कर्मचारियोंके साथ सभामें आये। सिंहासनकी दक्षिण बाजूकी विद्वन्मण्डलीके सिवा सब लोगोंने खड़े होकर राजकुमारका स्वागत किया। कुमारने भी बड़ी नम्रतासे उपस्थित ब्राह्मण-मण्डलीको प्रणाम किया। इसके बाद उनकी आज्ञासे वे सजे हुए उस सुवर्ण-सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। समन्तभद्र और उनका बड़ा पुत्र रत्नभद्र राजकुमारके पास दायीं ओर नीचा सिर किये खड़े रहे। उसी समय सभाके लोगोंने बड़े उत्साहसे एक ही साथ जय युवराज जितसेनकी जय!—

जय, वैदिक-धर्मकी जय ! – जय, वर्णाश्रमधर्मकी जय ! – आदि जोश भरे शब्दोंसे युवराज आदिका जय-जयकार मनाया । उस समय सभामें बैठे हुए लोगोंके कण्ठकी वह विराट् ध्वनि दिग्-दिगन्तमें गूँज उठी । इसी ध्वनिके साथ नाना तरहके बाजोंकी भी मधुर आवाज सुनाई दी । हजारों शंखोंकी विराट् ध्वनिने एक राज-प्रासादसे लेकर एक गरीबकी झोंपड़ी तकको कँपा दिया । श्रावस्तीके एक छोरसे दूसरे छोर तक यही जय-जयकार सुनाई पड़ने लगा ।

इसके बाद इस विराट् सभाका कार्य शुरू किया गया । सबसे पहले समन्तभद्रका पुरोहित आचार्य जैबाली खड़ा हुआ । उसकी आयु कोई सत्तर वर्षकी होगी । उसके लाल मुँह और आयत-सतेज नेत्रोंसे निकलती हुई क्रोधाग्निकी चिनगारियोंसे उसके हृदयके उद्वेग और प्रकंपका स्पष्ट भास होता था । उसकी तीव्र दृष्टि जिन लोगों पर पड़ती थी उन्हें यह भान हुए बिना नहीं रहता था कि मानों वह हम लोगोंको जला कर खाक कर देना चाहता है । उसकी लम्बी लम्बी जटाओंका सिरके साथ काँपना उसके हृदयकी अधीरताको सूचित करता था । वह इस विशाल जन-समुद्रके उलट देनेकी इच्छासे मानों श्रावणके जलभरे मेघोंकी भाँति गंभीर-गर्जनासे बोला—

"श्रावस्ती-निवासी वैदिकधर्म-निरत सज्जनो, क्या अब तुम्हारी अपने पूर्वजों—बाप दादोंके सनातन धर्म पर श्रद्धा नहीं रही है ! तुम अपनी इस समझको—बुद्धिको सदाके लिए खो बैठे हो कि तुम्हारा कल्याण किसमें है ! देखो, जिस धर्मका प्रचार मनुष्य करता है, वह कभी निर्दोष नहीं हो सकता । और इसी कारण दिव्य दृष्टिसे सब बातोंको जाननेवाले हम लोगोंके पूर्व महा पुरुष किसी एक मनुष्यके वचनोंमें विश्वास न कर अनादि-अपौरुषेय वेदों पर ही श्रद्धा रखनेके लिए हमें उपदेश कर गये हैं—समझा गये हैं । अपौरुषेय वेदोंमें जिस क्रिया-काण्डका

विधान देखा जाता है और यज्ञ वगैरेहमें जो जीवोंके बलिदान करनेकी हमें आज्ञा है वही विधि वास्तवमें हमारे लिए स्वर्गके दरवाजे खोल देनेवाली है और वही सब हवन-पूजन वगैरह हमें मोक्ष-मार्गमें लेजा सकते हैं। आज कल इस दयाधर्मके प्रचारके साथ हम लोगोंके बलिदान आदि कर्म भी निःसत्त्व होते जा रहे हैं। यह देख कर क्या तुमको लज्जा नहीं आती! वेदोंमें जो नर-बलि, अश्व-बलि, गौ-बलि देनेकी विधि है उसे महावीरका आज-कलका दयाधर्म बुरी बतला कर निन्दा करता है। परन्तु हमें उस निन्दा-की ओर बिल्कुल ध्यान न देना चाहिए। स्मरण रखना चाहिए कि हमारे क्रिया-काण्डमें कितनी भी अधिक हिंसा क्यों न हो वह पापकी कारण नहीं हो सकती। क्योंकि इस विषयमें अनेक वैदिक विद्वानोंका कहना है कि 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' अर्थात् वैदिक-धर्मके अनुसार की हुई हिंसा हिंसा नहीं है। वे इसे मानते हैं और हम भी इस समय माननेके लिए तैयार हैं। जिस यज्ञके धुएँकी सुगन्ध लेनेको देवता गण स्वर्ग छोड़ कर पृथ्वी पर आते हैं उस यज्ञका और प्राणि-वधका निषेध क्या तुम्हें उचित जान पड़ता है! जिन नाना क्रियाओंके प्रतापसे आज ब्राह्मणगण अपना जीवन बड़े सुख-चैनके साथ बिताते हैं और जिस वैदिक-धर्मके नामसे सैकड़ों-हजारों लोग अपने पाप-कर्मका प्रायश्चित्त लेकर सीधे स्वर्गमें जाते हैं उस वैदिक-धर्मके पवित्र क्रिया-कांडकी जड़में कुठाराघात होते देख कर मेरी तरह क्या तुम्हारा हृदय नहीं काँपता! क्या तुम्हें तुम्हारे पूर्वजोंके धर्मके साथ बिल्कुल सहानुभूति नहीं है! कुछ लोगोंको मैंने महावीर और उसके उपदेशकी प्रशंसा करते देखा है; परन्तु मैं उन लोगोंसे पूछता हूँ कि यह महावीर है कौन? जिसका चरित वेद-विरुद्ध है, जिसके उपदेशमें ईश्वरका नाम और स्वर्गके देवतोंको प्रसन्न करनेका एक मंत्र नहीं, और जिसने अपने बड़े भाई तथा सगे-सम्बन्धियोंके आग्रह करने पर भी संसारके

सुखरूप बन्धनको तोड़ दिया उस महावीरकी मीठी मीठी बातोंको सुन-कर और उसकी सुन्दरताको देख कर आप लोग उसके कपट-जालमें न फँस जावें; यह मेरी बार बार सूचना है—आग्रह है। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यदि तुम लोग उसकी बातोंको सुनोगे तो याद रक्खो इस सुख-सम्पत्तिके मूल कारण गृहस्थधर्मको खो बैठोगे, इतना ही नहीं; किन्तु पेट भरनेके लिए जो अन्नकी जरूरत पड़ती है उसके लिए भी फिर तुम्हें द्वार द्वार एक भिखारी भाँति भटकना पड़ेगा। जिस धर्मका उद्देश्य ही पग पग पर धन-दौलत, सुख-सम्पत्तिका परित्याग करके शारीरिक कष्टोंको सहन करना बतलाया जाता है और जो धर्म स्वर्गके सुखोंका कुछ मूल्य न समझ कर—उन्हें तुच्छ गिन कर मोक्ष प्राप्तिके लिए ही उपदेश करता है मुझे नहीं जान पड़ता कि उस धर्मके प्रति तुम्हारी आदर बुद्धि क्यों होनी चाहिए! गृहस्थो, मैं कहता हूँ कि धर्म अन्यत्र कहीं नहीं है। तुम्हें यदि धर्मकी चाह हो, स्वर्गके देवतोंकी आराधना करनी हो और उनकी प्रस-न्नता लाभ कर परम सुख-शान्तिके साथ जीवन बिताना हो तो हमारे पास आओ; और अपौरुषेय वेदकी शरण ग्रहण कर यज्ञ-पूजन, बलि-दान द्वारा इन ब्रह्म-देवतोंको रिझाओ—खुश करो। इतना कहने और हित-मा-र्गका उपदेश करने पर भी यदि तुम अपने सनातन धर्मको छोड़नेकी इच्छा करोगे तो कहना पड़ेगा कि तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है—तुम्हें बुद्धिभ्रम हो गया है और उससे तुम स्वयं अपना हित समझनेके लिए अस-मर्थ हो गये हो।"

वृद्ध आचार्य जैबालीकी आवाज धीरे धीरे बढ़ती ही गई। सभाके लोगों पर उसका बहुत ही प्रभाव पड़ा। वे और भी अधिक शान्त हो गये। तेजस्वी ब्राह्मणकी ओजस्विनी वक्तृताको सुन कर लोगोंके हृदयमें एक अपूर्व ही जोश और उत्तेजना फैल गई। उस समय वक्तृताके बीच-बीचमें श्रोताओंके अरुण मुख-मंडलसे जो धन्यवाद और जय-जयकारकी विराट् ध्वनि निकलती थी उससे वह अपार-असीम जन-सागर उमड़ उठता था।

अन्तमें आचार्य जैवालीने—जितना उससे बन पड़ा उतने आवेगके साथ—बड़े जोरसे सभासदोंको सम्बोधन करके कहा—" यज्ञेश इन्द्र तुम्हारे हृदयको सैकड़ों वज्रके इतना बल प्रदान करें, जिससे कि तुम अपने देव-सदृश पूर्वजोंके चिर-वांछित धर्मका अपमान करनेवाले महावीरको एक बार श्रावस्तीके बाहर निकाल सको। मैं चाहता हूँ कि वैदिक-धर्मकी जय हो; और महावीर जिस नास्तिक धर्मका प्रचार कर रहा है उसका अंकुर भी इस पवित्र भूमि पर न उगने पावे; और इसके लिए तुम्हें उचित है कि तुम महावीर और उसके अनुयायियोंको निकाल देश बाहर करदो। धर्म ही हम लोगोंका सहायक है; इस कारण तुम्हें एक बार धार्मिक जोशको अपने हृदयमें उत्पन्न कर अधर्मकी जड़को उखाड़ फेंकनी चाहिए। जय, सनातन वैदिक-धर्मकी जय ! "

आचार्य जैवालीकी जयध्वनिके साथ ही होनेवाली हजारों जयध्वनियोंने सारे सभा-भवनको गुँजा दिया। उसकी आवेगपूर्ण जोशीली वक्तृताको सुन कर कितने ही लोग तो अत्यन्त ही उत्तेजित हो उठे। उन्होंने मन-ही-मन इस बातकी प्रतिज्ञा की कि वे इसी समय जेतवनमें जाकर जोर-जुल्मके साथ महावीरको श्रावस्तीसे निकाल बाहर कर देंगे। वे इतने अधीर हो गये कि एक क्षण भरका विलम्ब भी उन्हें सहन करना कठिन हो गया। थोड़ेमें यों कहना चाहिए कि इस विशाल जन-सागरने प्रलयकालके महा भयंकर समुद्रके जैसा रूप धारण कर मानों भीषण गर्जना शुरू की है। उसकी उस गर्जनासे सब दिशायें प्रतिध्वनित हो उठीं।

इतनेमें बाहर थोड़ी दूर पर एक भयंकर कोलाहल सुनाई दिया। धीरे धीरे वह कोलाहल बढ़ता ही गया। परन्तु सभाके लोग इस बातका निश्चय नहीं कर सके कि यह कोलाहल कहाँ और क्यों हो रहा है। वे भीतर ही भीतर घबराने लगे। इससे सभाके काममें बड़ा भारी विघ्न आ-उपस्थित हुआ। सब लोग परस्परमें पूछने लगे कि यह सब क्या

गड़बड़ है—यह क्या हो रहा है ! इसके लिए बाहरकी ओर उन्होंने दूर तक नजर दौड़ा कर चारों ओर देखा; परन्तु उन्हें कुछ भी पता न लगा । धीरे धीरे सबको जान पड़ा कि वह कोलाहल पास-पास आ रहा है । उसके शब्द भी अब उन्हें कुछ कुछ स्पष्ट सुनाई पड़ने लगे । इतनेमें एक साथ हजारों भक्ति भरे कंठोंसे निकली हुई जय–महावीर स्वामीकी जय !—जय, जैनशासनकी जय !—की विराट् ध्वनि उठी और सभाके लोगोंको जान पड़ा कि वह उस विशाल जन-सागरको दबा देना चाहती है । इस बातको कोई नहीं समझ सका कि यह क्या हुआ और अभी अभी कौन आ गया ! सभाका काम आगे चलानेके लिए उन लोगोंका सब यत्न निष्फल गया । अन्तमें जब कुछ वश न चला तब उद्वेग, विस्मय और क्रोधसे काँपते हुए जैबालीने एक लम्बी साँसली और 'हा दैव ! ' कह कर विवश वह अपने आसन पर बैठ गया ।

तेरहवाँ परिच्छेद।

अद्भुत प्रभाव।

सब लोग आश्चर्यभरी दृष्टिसे उसी ओर देखने लगे, जिस ओरसे कि वीरप्रभुकी जय!—जैन शासनकी जय!—की विराट् ध्वनि पृथ्वी और आकाशको गुँजा रही थी। उन्हें जान पड़ा कि सचमुच महावीर भगवान ही सभा-मण्डपमें आ रहे हैं। प्रभुका शान्त-गंभीर मुख, उज्वल-आयत नेत्र और प्रसन्न-उदार-विश्वमोहिनी चितवनको देख कर सारी सभा मुग्ध हो गई! प्रभु जिस ओर अपनी उज्वल-नील दृष्टि डालते थे जान पड़ता था कि उस ओर अमृत या नीले कमलोंकी वर्षा हो रही है। उस समयकी प्रभुकी मूर्तिका वर्णन यह तुच्छ लेखनी नहीं कर सकती। अहा! प्रभुके निर्भय-निर्दोष-प्रेमपूर्ण मुख-कमलकी मृदु-मधुर-स्निग्ध मुस्कराहटको देख कर यह भान होता था मानों स्वच्छ पवित्र जल पर शरदृऋतुकी शान्त ज्योत्स्नाका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। अहा! वह कितनी शान्त करुणामय मूर्ति थी जिसे जीवनमें एक बार भी देख लेने पर हृदयके चिरसंचित सब पाप क्षण भर शान्त हो जाते थे। अहा! प्रभुके उस फूलसे कोमल और तेजःपूर्ण शरीरको देख कर यह भान होता था मानों वह तपे हुए शुद्ध सुवर्ण द्वारा बनाई हुई उज्ज्वल सुन्दरताकी राशि है। जिसे देख कर कामदेवका गर्व खर्व हो जाता है भगवानके उस सुन्दर शरीर पर यद्यपि कोई वस्त्र या अलंकार न था तो भी उनके उस अपूर्व रूप और अलौकिक प्रभावको देख कर आश्चर्य-सागरमें डूब जाना पड़ता था। प्रभु जैसे जैसे आगे बढ़ते जाते थे वैसे वैसे लोग सिर झुकाये हुए उन्हें रास्ता देते जाते थे। इसके पहले सभामें जो उत्तेजना और उद्वेग फैल रहा था,

वह प्रभुके दर्शन मात्रसे क्षण भरमें शान्त हो गया। तूफान उठनेके बाद समुद्रमें जैसी शान्ति फैल जाती है वैसी ही शान्ति इस समय इस सभामें विराज रही थी। प्रभु धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। प्रभुका वह धैर्य आचार्य जैवाली तथा ऐसे ही कुछ और दस पाँच लोगोंसे न सहा गया। वे रोष-क्षोभ और अभिमानसे उत्तेजित होकर सभासे उठ कर चले गये।

महावीर भगवानने एक बार सारी सभाकी ओर प्रशान्त-गंभीर भावसे देखा। उसी समय हजारों मनुष्योंके कंठसे निकले हुए जयनिनादने सारे सभा-मण्डपको गुँजा दिया। सब लोगोंने हाथ जोड़ कर एक बार और प्रभुको सिर झुकाया। इस प्रकार सभाके जय-जयकारके साथ प्रभु सुन्दर ध्वजा-चन्दनमाला आदिसे सजाये हुए मनोमोहक चौंतरे पर जा खड़े हुए। प्रभु जैसे ही वहाँ पहुँचे कि सारी सभाने खड़े हो कर भगवानका स्वागत किया। राजकुमार जितसेन भी सिर झुकाये हुए प्रभुके पास आकर खड़े हो रहे। उसी समय पुनर्वार जय—महावीर प्रभुकी जय !— जय, जैनशासनकी जय !— इत्यादिकी विराट् ध्वनिसे सारा सभा-मंण्डप गूँज उठा।

चौंतरेके मध्य खड़े होकर प्रभुने एक बार फिर सभाकी ओर दृष्टि डाली। इसके बाद उस चकित और स्तब्ध जन-समूहको लक्ष्य कर वीर-प्रभुने अपनी स्वाभाविक मधुर-गंभीर वाणीसे उपदेश करना शुरू किया। भगवानकी उस पवित्र वाणीमें उद्वेग या उत्तेजनाका लेश भी न था। जान पड़ता था प्रभुकी विशुद्ध आत्माकी गहराईमेंसे अनुभवकी शान्त-स्निग्ध-सुमधुर तरङ्गें उठ रही हैं।

प्रभुकी उस गंभीर वाणीमें जो कहा गया था, उसे यदि हम आज ढाई हजार वर्ष बाद यथार्थ रूपमें कहनेका यत्न करें तो इसका यह अर्थ होगा कि प्रभुकी उस वाणीका हम कुछ मूल्य ही नहीं समझें। प्रभुके मुख-चन्द्रसे झरे हुए उन अमृत तुल्य एक एक शब्दों पर विद्वान् ऋषियों—

आचार्योंने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ निर्माण कर संसार पर अद्भुत प्रकाश डाला है । इतना होने पर भी वे स्वयं इस बातको स्वीकार करते हैं कि वे प्रभुकी उस वाणीका पूर्ण प्रभाव, पूर्ण अर्थ और पूर्ण आशय नहीं समझा सके हैं। तब फिर इसमें क्या आश्चर्य जो हम उसके यथार्थ प्रगट करनेका यत्न करें तो हमारा वह यत्न हँसने योग्य और दुःसाहस समझा जाय ! परन्तु कर्तव्यके अनुरोधसे प्रभुकी वाणीका स्थूल मर्म इस रूपमें कहा जा सकता है:—

" भव्यजनो, जिस सत्यका हम प्रचार करना चाहते हैं वह सत्य यह है कि धर्मकी प्राप्ति केवल सामाजिक रूढ़ियों और बाह्य क्रिया-काण्डोंके पालनेसे ही नहीं हो सकती। धर्म यह एक वास्तविक सत्यार्थ सत्य है। और सत्यधर्मके ग्रहण करनेवाले फिर जीवमात्रके प्रति समान भावसे देखने लगते हैं। इस कारण जीवमात्रका यह लक्ष्य होना चाहिए कि वे राग-द्वेष आदि आत्म-शत्रुओं पर विजय लाभ कर आत्म-स्वरूप लाभ करें। इस लिए जिन्हें संसारकी शोक-ताप-पूर्ण ज्वालाओंसे निकलना हो—आत्म-रक्षा कर अनन्त सुख लाभ करना हो उन्हें विविध तप तप कर आत्माके ऊपर चढ़े हुए आवरणोंको दूर करनेका यत्न करना चाहिए।* "

इतना कह चुकने पर प्रभुने संसारका यथार्थ स्वरूप, कर्मोंके बन्ध-मोक्षका

---

* Mahavir proclaimed in India the message of salvation that religion is a reality and not a mere social convention; that salvation comes from taking refuge in that true religion and not from observing the external ceremonies of the community, that religion cannot regard any barrier between man and man as eternal verity. Wondrous to relate, this teaching rapidly over topped the barriers of the race's abiding instinct and conquered the whole country. For a long period now the influence of Kshatriya teachers completely suppressed the Brahmin power (Sir Ravindra Nath.)

स्वरूप तथा आत्माके दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि धर्मोंका विस्तारके साथ वर्णन किया। उस युगकी अँधाधुन्दीके कारण जो दया-धर्मकी महत्ता नष्ट-प्राय हो चुकी थी, उसका फिरसे उद्धार किया। उपदेशके समाप्त होने पर प्रभुने फिर एक बार अपनी स्वाभाविक तेजःपूर्ण दृष्टिको सभाके लोगों पर डाला। देख पड़ा कि सब श्रोतागण प्रभुके प्रभावपूर्ण उपदेशसे अपनी स्थितिको भूल कर कभी अनुभवमें न आई हुई शान्तिकी नदीमें बहे जा रहे हैं।

इन सब बातोंका राजकुमारके हृदय पर बहुत ही गहरा असर पड़ा। वह अपने आसनसे उठ कर समन्तभद्रका हाथ पकड़े हुए लज्जासे धीरे धीरे पाँव उठाता हुआ प्रभुके पास आया और उनके पाँवोंमें गिर पड़ा। उस समयकी उसकी दशा बहुत ही करुणा-जनक थी। उसकी आँखोंमें आँसू छलक आये थे। गला भर आया था। बड़ी कठिनतासे उसने गद्गद् होकर कहा—

"प्रभो, अज्ञानता-वश किये गये मुझ अधमके इस पहले अपराधको क्षमा कर दीजिए। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजसे आपके चरणोंका अनुकरण करूँगा— इसमें कभी प्रमाद या असावधानी न होगी। इसके लिए मुझसे जितना बन सकेगा उतना यत्न करूँगा कि श्रावस्तीमें सदा जैनशासनकी ध्वजा उड़ती रहे और अन्य प्रान्तोंमें जो कुछ लोग जैन शासनके प्रचारका विरोध करते हैं वह शान्त हो जाय। पवित्र वीतराग धर्मकी प्रभावनाके लिए मुझसे जितनी तन-मन-धनकी बलि दी जा सकेगी उतनी देकर मैं अपनेको बहुत भाग्यवान समझूँगा। हे अनाथोंके नाथ, हे पतित-पावन, और हे अकारण करुणा-सिन्धो, मुझे क्षमा कर अपने पवित्र चरणोंका आश्रय दीजिए!"

बूढ़े समन्तभद्रने भी इसके बाद काँपते हुए प्रभुके चरणोंको छूकर क्षीण स्वरसे कहा—"देवाधिदेव, मैंने अनन्त अपराध किये हैं। उनके

लिए मैं अत्यन्त ही लज्जित हो रहा हूँ। दया करके मुझे क्षमा कीजिए। बड़ी नम्रताके साथ मेरी यह आपसे प्रार्थना है। प्रभो, मैं बड़ा ही अधम हूँ जो आपमें किसी प्रकारका दोष न होने पर भी दोष बतला कर मैंने लोगोंको भड़काया—उत्तेजित किया और पापका बिल्कुल भय न किया। नाथ, इस गुरुतर अपराधकी क्षमा कर अपनी स्वाभाविक क्षमाशीलता और उदारताका परिचय दीजिए। प्रभो, मुझ जैसे अधम—अधःपतितका यदि आप उद्धार न करेंगे तो फिर केवल आपके नाममात्रका स्मरण कर प्राणिगण इस अगम-अथाह भव-सागरको कैसे पार कर सकेंगे! देव, जब कि आपके चरण-स्पर्श मात्रसे जड़ वस्तु भी पूज्य बन जाती है तब आपकी पवित्र प्रतिमाको हृदयमें विराजमान करनेसे क्या मुझे असंख्य दोषोंसे—पापोंसे—छुटकारा न मिलेगा! मिलेगा और अवश्य मिलेगा! नाथ, आप तो पारस हो तब क्या आपका स्पर्श पाकर भी मैं लोहा ही बना रहूँगा! नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता! प्रभो, इस अधमको क्षमा करके आशीर्वाद दीजिए कि भव-भवमें आपके पतित-पावन चरणोंका मुझे आश्रय मिलता रहे और आपके प्रति मेरी भक्ति सदा अचल अटल अखंड बनी रहे! जगदीश, आपके दर्शन और चरण-स्पर्शसे आज मेरा सब छल-कपट-अभिमान नष्ट होकर मेरा कुल और घर आज पवित्र हो गया!"

थोड़ेमें यह कहा जा सकता है कि महावीर प्रभुके अद्भुत प्रभावने सारी सभाको एक दूसरे ही रूपमें बदल दिया। उस समय क्या बालक, क्या जवान और क्या बूढ़े सभी हाथ जोड़ सिर झुका भगवानको प्रणाम करने लगे। छत पर बैठी हुई स्त्रियाँ भगवानके ऊपर फूलों और मोतियोंकी वर्षा करने लगीं। लोगोंकी विराट् जय-ध्वनिसे दसों दिशायें गूँज उठीं। सब ओर आनन्द ही आनन्द दिखाई पड़ने लगा।

अन्तमें सबको उत्साह देकर प्रभु जेतवनकी ओर रवाना हो गये।

प्रभुके आश्वासनसे लोगोंके हृदयोंको बहुत शान्ति मिली। उस समय राजकुमार और समन्तभद्र भी कई प्रतिष्ठित धनी-मानी सज्जनोंके साथ प्रभुके पीछे पीछे जेतवनमें गये। जेतवनमें पहुँचते ही समन्तभद्र अपने दोनों पुत्रोंके पास दौड़ा गया। उस समय उन पिता-पुत्रोंको परस्पर मिलनेसे जो आनन्द हुआ होगा उसका बिना अनुभवके पता नहीं लग सकता। इस सम्बन्धमें व्यर्थका विस्तार करके हम अपनी लेखनीकी असमर्थता नहीं बतलाना चाहते।

चौदहवाँ परिच्छेद ।

रत्नमाला कहाँ गई ?

दूसरे दिन सवेरे ही रत्नमालाके पिता वसुभूति कौशाम्बीसे वापिस आ गये। समन्तभद्र उस समय अपने दरवाजेके आँगनमें बैठे हुए थे। दोनों मित्र बड़े प्रेमसे मिले। इसी समय समन्तभद्रने वसुभूतिको एक ऐसा समाचार सुनाया कि उससे वसुभूतिका हृदय विदीर्ण होने लगा। चिन्तासे उनका सारा शरीर गरम हो उठा। समन्तभद्रने कहा—"भाई, कल रातसे ही रत्नमालाका पता नहीं है। किसीसे कुछ न कह सुन कर वह न जाने कहाँ चली गई! उसकी तलाश करनेमें मैंने कोई बात उठा न रक्खी; परन्तु अब तक उसका कोई पता न चला।" इस समाचारसे वसुभूतिकी जो हृदय-द्रावक अवस्था हुई उसे देख कर समन्तभद्रकी आँखोंमें भी आँसू भर आये। उन्हें अपनी इस असावधानी पर बहुत ही दुःख हुआ कि अपने मित्रकी कन्या रत्नमाला उनके घरसे इस प्रकार एका एक न जाने कहाँ गुम हो गई! वसुभूतिने जगह जगह नौकर-चाकरोंको भेज कर फिर और भी रत्नमालाकी बहुत खोज कराई; परन्तु सन्तोष-कारक समाचार उन्हें कहींसे भी न मिले। वे रत्नमालाके इस आचरणसे बहुत दुखी हुए। उस पर उन्हें क्रोध भी आया। शोक और क्षोभसे उनकी उन्मत्तके जैसी दशा हो गई। इस बूढ़ी अवस्थामें अपने जीवनके एकमात्र आधार आँखोंके एकमात्र तारेको इस तरह टूट पड़ते देख कर वे चीख मार कर रो पड़े। इस बातको हम पहले जान चुके हैं कि वसुभूति रत्नमाला पर कितना प्यार करते थे। इस कारण उन्हें इस बूढ़ी दशामें अचानक ऐसे भयंकर आघातसे अधिक कष्टका होना स्वाभा-

विक ही है। रत्नमालाकी नानीकी भी इस समाचारसे बड़ी बुरी दशा हो गई। जबसे उसने यह समाचार सुन पाया है तबसे उसकी आँखोंके आँसू अब तक थमे नहीं हैं। चारों ओर इसी विषयकी बातें होने लगीं कि रत्नमाला कहाँ थी, उसे किसने कब कहाँ देखा था और वह कहाँ चली गई? परन्तु किसीको उसका सन्तोष-जनक समाचार ज्ञात नहीं हुआ। वहाँ पर जो रत्नमाला अपने बहुमूल्य वस्त्रा-भूषणों और पुस्तकोंको छोड़ गई है उन्हें देख देख कर वसुभूतिका दुःख और भी अधिक बढ़ जाता है।

जिस समय ब्राह्मण-समाजकी वह विराट् सभा समाप्त हुई और बाहरसे आई हुई महिलायें समन्तभद्रके घरसे अपने अपने घर जाने लगीं उस समय उनकी घोड़ा-गाड़ी आदिके कारण चारों ओर बड़ा कोलाहल मच गया था। किसीकी गाड़ीका पता नहीं था। किसीके सईस लोग कहीं चले गये थे। किसीकी गाड़ीके बैलों या घोड़ोंका पता नहीं था। किसीके नौकर चाकरोंको बार बार पुकारने पर भी कुछ जवाब न मिलता था। अनुसंधानसे सबने यही निश्चय किया कि रत्नमाला अपने लिए इस गड़बड़के मौकेको अच्छा समझ कर इसी समय चलदी है। उस समय समन्तभद्रके नौकर-चाकर और घरके लोग सभामें आये हुए जन-समाजके रवाना करने तथा उनकी जरूरतोंको पूरी करनेमें रुके हुए थे, इस कारण वे रत्नमालाकी कोई खबर न ले सके। उस दिन बड़ी रात तक यह गड़-बड़ रही, इस कारण इस बातकी खोज करना उस समय सहज संभव नहीं था कि रत्नमाला कहाँ गई, क्यों गई; और किसके साथ गई? किसी किसी नौकरने समन्तभद्र और वसुभूतिको धीरज बँधानेके लिए यह भी कहा कि हो सकता है, रत्नमाला अपनी किसी सहेलीके यहाँ चली गई होगी। और वह किसीको खबर तो इस लिए नहीं कर गई कि उस समय घरके सब लोग-बाग तो दूसरे दूसरे

कामोंमें रुके हुए थे। पर संभव है कि वह आज शामको घर पर अवश्य आ जायगी। व्यर्थ चिंता करनेका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।" वसुभूतिको ऐसे आश्वासनसे कुछ शान्ति नहीं मिली। उनने अपनी खोज बराबर जारी ही रक्खी।

मणिभद्रको भी इस समाचारसे बहुत कष्ट हुआ। वह खाना-पीना सब छोड़ कर रत्नमालाकी खोजमें निकल गया। वह उसे ढूँढ़नेके लिए चारों ओर घूमता फिरता है, पर जब उसे रत्नमालाका कहीं पता नहीं मिलता तो बड़ा ही निराश होकर लंबी लंबी साँसें लेने लगता है। रत्नमालाके दर्शनकी उसके हृदयमें बड़ी तीव्र उत्कंठा लग रही है, इस कारण उसके ढूँढ़नेमें जो उसका समय जाता है वह उसे असह्य हो उठता है। वह रत्नमालाकी उस दिनकी अपूर्व करुणा, असाधारण हिम्मत और स्वर्गीय सुन्दरताको अब तक नहीं भूल गया है और न जीवन पर्यंत भूलनेका है; जिस रातको कि उसे रत्नमालाने कारा-मुक्त किया था। इस देवी-प्रतिमाके एकबार दर्शन कर वह अपनेको कृतार्थ करना चाहता है, पर रत्नमाला है कहाँ ?

इस प्रकार रत्नमालाके सम्बन्धमें नाना तरहकी बातें और खोजें हो रही थीं कि इतनेमें धनदत्त सेठके एक नौकरने आकर समन्तभद्रके हाथमें एक पत्र दिया। समन्तभद्रने उसी समय लिफाफेको फाड़ कर पत्रको पढ़ा। पत्र पढ़नेके साथ ही उनके चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई पड़ने लगी। उनने उसी समय वसुभूतिके पास जाकर बड़े आनन्दके साथ वह पत्र उन्हें पढ़नेको दिया। पत्रको पढ़ कर वसुभूतिकी आँखोंमें भी आनन्दाश्रु भर आये। पत्रमें लिखा हुआ था कि—

" प्रियबन्धु,

अपने प्रिय मित्र वसुभूतिकी कन्या रत्नमाला कल आधी रातके लगभग सुवर्णगुप्तकी पुत्रियोंके साथ मेरे यहाँ आ गई है। वह आपसे बिना कुछ

पूछे-ताछे क्यों आई, इसके लिए मैंने उससे बहुत पूछ-ताछ की; परन्तु सन्तोष-जनक उत्तर कुछ नहीं मिला। जान पड़ा वह इस विषयमें मुझसे कुछ कहना नहीं चाहती। उसकी इच्छा है कि जब तक उसके पिता कौशाम्बीसे न लौट आवेंगे तब तक वह मेरे ही घर रहेगी। वसुभूतिकी या आपकी पुत्रीको मैं अपनी ही पुत्री समझता हूँ, इस कारण उसके लिए किसी प्रकारकी चिन्ता न कीजिएगा। कल मैं सारे दिन जेत-वनमें भगवानके ही पास था, इस कारण आपको जल्दीसे समाचार न दे पाया। आशा है इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। रत्नमाला चाहती है कि उसकी नानीको भी आप यहीं भिजवा दें तो बहुत अच्छा हो। इति।

विशेष यह है कि इसी पत्रके साथ एक पत्र स्वयं रत्नमालाने लिख कर भेजा है, उसे सँभाल कर सौभाग्यवती श्रीमणिमालिनीके पास पहुँचा दीजिएगा।

आपका सेवक—

धनदत्त।"

पत्रको पढ़ कर वसुभूतिमें मानों नई चेतनासी आ गई। उनका खेद-खिन्न मुँह प्रसन्नताकी ज्योतिसे प्रकाशित हो उठा। वे फिर क्षणभरका भी विलम्ब न कर उसी समय अपनी प्रिय पुत्रीसे मिलनेको चले गये। इस समाचारसे मणिभद्रके चिन्ता-मलिन गंभीर मुँह पर भी क्षण भरके लिए उल्लास पूर्ण स्निग्ध हँसीकी चाँदनी खिल उठी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

रत्नमालाका पत्र।

"बहिन मणिमालिनी,

इसके लिए मैं अवश्य तुम्हारी दृष्टिमें अपराधिनी हूँ कि तुम्हें बिना कुछ कहे सुने मैं यहाँ आ गई। अपना अपराध मैं स्वीकार करती हूँ और साथ ही यह प्रार्थना करती हूँ कि इस अपराधके लिए मुझ दुःखिनीको क्षमा कर अपनी उदारताका परिचय दो। बहिन, इस बातकी चिन्ता नहीं है कि दूसरे मुझे क्षमा करेंगे या नहीं; परन्तु व्याकुल हृदयने इस बातकी आशा नहीं छोड़ दी है कि तुम उसे अवश्य ही क्षमा प्रदान कर दोगी। इसके लिए मैं बड़ी नम्रताके साथ बार बार प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारी स्नेह-पात्र रत्नमालाको--आजन्म-दुःखिनी रत्नमालाको--उसके अपराधकी क्षमा कर सुखी करो। बहिन, आगेके लिए तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि अब कभी इस जीवनमें मैं ऐसा अपराध नहीं करूँगी।

बहिन, अपनी दुःख-कथा मैं तुमसे क्या कहूँ, उसे कहते हुए हृदय फटता है। मैं अपने घरमें ऐसी अभागिन पैदा हुई कि मेरे जन्मके थोड़े ही दिनों बाद मेरी प्यारी माता स्वर्ग सिधार गई। संसारमें सबसे श्रेष्ठ वस्तु यदि कोई है तो वह मातृ-प्रेम है; परन्तु दुर्भाग्यसे मैं उसका कुछ सुख न भोग सकी। मेरा विश्वास है कि प्रेममयी माताकी पवित्र-प्रतिमा जिस हृदय पर अंकित नहीं होती उसका जीवन मेरे ही समान दुःखपूर्ण और निष्फल है। माताके बाद पिताजीने भी मेरे लिए कष्ट उठानेमें

कोई बात उठा न रक्खी; परन्तु दुःख है कि जन्मसे आज तक मेरे द्वारा कोई ऐसा काम नहीं हुआ जिससे पिताजी एक क्षण भरके लिए भी सुखी होते ! बहिन, पिताजीके स्नेहकी तो मैं बात ही क्या कहूँ; वे मेरे ही लिए–मुझे मातृ-हीन आजन्म दुःखिनी समझ कर–सदा चिन्तित और दुखी रहा करते हैं। बहुत करके तुम्हें भी यह बात मालूम ही होगी। इसके सिवा मैं इतनी अभागिन हूँ कि जहाँ जहाँ जाती हूँ वहाँ वहाँ विपत्ति मेरे पीछे ही पीछे दौड़ती रहती है। तुम स्वयं इस बातको सोच सकती हो कि जबसे मैं तुम्हारे घर आई हूँ तबसे तुम्हारे सुखमय संसार पर कितनी कितनी विपत्तियाँ आकर गिरी हैं। मेरे कारण तुम्हारे कुटुम्बको जो जो विपत्तियाँ सहनी पड़ी हैं उन्हें याद करके मेरा हृदय काँप उठता है।

कल करुणासिन्धु वीरप्रभुने स्वयं पधार कर तुम्हारे घरको प्रकाशित किया था। मुझे यह देख कर बहुत आनन्द हुआ कि उनके पवित्र चरणोंकी धूलसे तुम्हारा घर पवित्र हो गया और उसकी सब विपत्तियाँ विलीन हो गईं। इस समय संभव है, तुम्हारे मनमें यह प्रश्न उठे कि जब यहाँ इतना आनन्द था तब फिर ऐसे समय मैं स्वयं क्यों तुम्हारे घरको छोड़ कर यहाँ चली आई ? क्यों मैं उस समय ऐसी कठोर बन गई ? बहिन, यही बात समझानेके लिए मैंने यह पत्र लिखा है। परन्तु बहिन, बीच-बीचमें मनमें यह भी भावना हो जाती है कि इन सब बातोंका खुलासा न करना ही अच्छा है। कारण उससे तुम्हारे हृदयको भी दुःख पहुँचना संभव है। इन सब बातोंको विचार कर यही इच्छा होती है कि पत्रको यहीं समाप्त करदूँ। परन्तु साथ ही यह भी अच्छा नहीं लगता कि मेरे भाग आनेका यथार्थ कारण न बतानेसे तुम्हें नाना प्रकार तर्क-वितर्क करके दुःख उठाना पड़े। इस कारण सच्चा हाल लिखे बिना जी नहीं मानता। आशा है कि इस पत्रकी कोई भी बातको तुम किसी पर प्रगट न करोगी और इसके लिए मैं तुम्हारी बहुत ही उपकृत होऊँगी।

जब महावीर भगवान भव्य लोगोंके साथ घरसे बाहर हुए और तुम्हारे ससुर उनके साथ जेतवनकी ओर गये तब मैंने सोचा कि अब इस घरमें रहना मुझे उचित नहीं है। क्यों मुझे ऐसा जान पड़ा इसी बातको मैं सविस्तर लिखती हूँ।

तुम्हारे घरमें जो घोर अशान्तिका आरंभ हुआ था उसे वीरप्रभुकी कृपासे दूर हुआ देख कर मुझे विश्वास हुआ कि आज या कल, अथवा एक-दो दिन बाद मणिभद्र अवश्य घर पर आवेंगे। उस समय उनका और मेरा एक ही घरमें रहना मुझे निर्विघ्न नहीं जान पड़ा। कारण वे जब ऊपरकी कोठड़ीमेंसे छूट कर भागे थे उस समय उनके और मेरे हृदयकी जो स्थिति थी उससे तुम अजान नहीं हो; और न इसके लिए मैं ही उसे विस्तारसे लिख कर पत्रको बढ़ाना चाहती हूँ। इस पर तुम यह कहो कि इसमें ऐसी क्या बाधा आती कि जिससे तुरत ही तुम चली गईं? वास्तवमें उसमें क्या बाधा आती इस बातका तो मैं अब तक निर्णय नहीं कर सकी हूँ; परन्तु इतना जरूर है कि हम दोनोंको एक जगह रहनेसे उनके लिए मैं और कोई नई विपत्तिकी कारण बनजाऊँ तो असंभव नहीं। तुम कहोगी कि मैं स्वयं ही जब मणिभद्रके साथ ब्याह कर लेनेके लिए कह चुकी हूँ तब इस तरह इधर उधर भागते फिरते रहनेका क्या कारण है? इसके उत्तरमें मेरा इतना ही मात्र निवेदन है कि आखिर मैं स्त्री हूँ और इस बातको अच्छी तरह जानती हूँ कि मेरा हृदय कितना दुर्बल है और कहाँ तक उसके दुर्बल होनेकी सीमा है। मैंने उस दिन यह कहा था सही कि मैं मणिभद्रके साथ ब्याह कर लूँगी; परन्तु साथ ही यह भी कहा था कि इससे पिताजीका मन प्रसन्न हो, तो मुझे कुछ इन्कार नहीं है। और न तुम ही इस बातको भूली होगी। परन्तु जब मैंने इस विषय पर जरा गहरा विचार किया तब मुझे जान पड़ा कि ब्याह करना अच्छा नहीं है। यही कारण है कि मैं

अपने संकल्पको छोड़ कर पीछी पहले संकल्प पर आ गई हूँ । वह संकल्प यही है कि इस जीवनमें मैं कभी ब्याह न करूँगी । मैंने अपने जीवनका यह उद्देश्य स्थिर किया है कि जिनदीक्षा लेकर मैं धर्मका अनुशीलन और परहित-सेवा-व्रतका सच्चे हृदयसे पालन कर जीवन बिताऊँगी । मैं जानती हूँ कि पिताजी मेरी इस प्रतिज्ञाको सुन कर बहुत दुखी होंगे; परन्तु इसके लिए मैं अपने जीवनके उच्च उद्देश्यको पाँवतले रौंदना नहीं चाहती । इस बातका विचार करके मैं काँप उठती हूँ कि मेरे इस निश्चयसे पिताजीका जीवन अत्यन्त कष्टमय बन जायगा; परन्तु लाचार हूँ । जान पड़ता है भाग्यमें कुछ और ही बदा है !

बहिन, मेरा क्षण भर भी ऐसा समय नहीं बीतता जो हृदयमें पिताजीके दुःखका विचार कष्ट न देता हो । मैं यह जानती हूँ कि पिताजीका मुझ पर अत्यन्त ही स्नेह है और मेरे इस निठुर व्यवहारके कारण उनके उस अकृत्रिम स्नेहको बड़ा धक्का पहुँचेगा । परन्तु बहिन, यह बात तो तुम भी जानती होगी कि जैसा ही पिताजीके हृदयमें प्रेम है वैसे ही वे धर्म-प्रिय भी हैं । इस कारण असंभव नहीं कि मेरे दीक्षा लेनेसे आरंभमें उन्हें कुछ दुःख हो; परन्तु जब वे इस बातको समझेंगे कि मैंने ब्याह न करके अपना पवित्र जीवन उच्च मार्ग—शासनकी निःस्वार्थ सेवाके लिए उत्सर्ग कर दिया है तब उन्हें क्या आनन्द हुए बिना रहेगा ! अपनी सन्तानके जीवनको सफल होता हुआ देख कर धर्मप्राण पिताजीका हृदय क्या प्रसन्न न होगा ! बहिन, जरा गहरे विचारके साथ मेरी बातों पर मनन करोगी तो सब बातें स्पष्ट तुम्हारी समझमें आ जायगीं ।

पिताजी, जो उस दिन हम लोगोंको तुम्हारे यहाँ अकेले छोड़ कर कौशाम्बी चले गये थे उसमें जो उनका गूढ़ अभिप्राय था उसे मैं उसी समय समझ गई थी । वह यही था कि मेरी उम्र अब ब्याहके योग्य हो चुकी है । इस कारण मेरा हृदय कामदेव-सदृश सुन्दर मणिभद्रको देख कर उनकी

ओर आकर्षित हो, और उनके साथ मुझे बात-चीत करनेका मौका मिले, तो बहुत संभव है कि मेरी इच्छा ब्याह करनेकी हो जाय। ऐसा होने पर चिर समयकी उनकी कामना बिना किसी कष्टके सहज ही सफल होना संभव है। और मैं भी यह नहीं कह सकती कि पिताजीकी यह आशा निर्मूल थी या वे ऐसी आशा करके भ्रममें पड़ गये थे। उस रातको जो पहली ही बार माणिभद्रके साथ मेरा साक्षात् हुआ था, और उस समय बात-चीत भी कुछ ज्यादा न हो सकी थी; परन्तु उस थोड़े ही समयके साक्षात्कार और बात-चीतका इतना गहरा असर हुआ कि उसे मैं अब तक भी नहीं भूल सकी हूँ। इसके साथ ही मैं यह भी अच्छी तरह समझ गई कि निर्बल हृदयकी रमणियोंके लिए पुरुषोंके सामने अपने आत्म-संयमकी रक्षा करना बहुत ही कठिन है। और फिर मेरे जैसी निर्बल-हृदयकी स्त्रियोंके लिए तो और भी अधिक कठिन है, बल्कि यों कहना चाहिए कि असंभव ही है।

बहिन, संसार-सम्बन्धी भोग-लालसाकी ओर मेरी बिल्कुल ही आसक्ति नहीं है, तब दो दिनकी सुन्दरताके मोहमें पड़ कर मनुष्य-जीवन व्यर्थ गँवा देना क्या योग्य समझा जायगा। मुझसे ऐसा कभी नहीं हो सकता। सच कहती हूँ बहिन, उनके साथ पहले ही समागम और बात-चीतमें मेरा हृदय काँप गया था। उनका हाथ छूनेसे मेरा सारा शरीर रोमांचित हो गया था। उनसे बात-चीत करते समय मुझसे बराबर बोला भी नहीं जाता था। देखा बहिन, स्त्री-हृदय कितना दुर्बल है, कितना क्षुद्र है, और कितना चंचल है!

इसके बाद जब वे चले गये तब उनके सम्बन्धमें मेरे हृदयमें कितने कितने विचार आये और कितनी कितनी चिंतायें हुईं। उन सबका लिखना मेरे लिए असंभव है। मुझे इस विचारने कई बार पागलसी बना डाला था कि उनके शान्त-गंभीर-उज्वल नेत्रोंको मैं अब इस जीवनमें कभी नहीं

देख सकूँगी। कई बार मेरी आँखोंने उनके लिए आँसुओंकी वर्षा की है। इन सब लक्षणोंको मैं अपने लिए बुरा समझती हूँ। इसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं है कि ये सब रमणी-हृदयके अधःपातके चिन्ह हैं। पहले भी मैंने बहुतसे अच्छे अच्छे सुन्दर, कुलीन, धनी युवाओंको देखे हैं; परन्तु उन्हें देख कर मेरे हृदयमें किसी प्रकारका असर नहीं हुआ; और जबसे मणि-भद्रको देख पाया है तबसे हृदयकी गहराईमें एक विलक्षण सहानुभूतिका झिरना फूट निकला है। नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है। बहिन, कारण चाहे कुछ भी हो; परन्तु इतना तो अवश्य है कि ऐसे प्रलोभनोंके बीचमें रह कर मन पर विजय लाभ करना मुझ जैसी दुर्बल स्त्रियोंके साहसकी बात नहीं है; बल्कि कहना चाहिए ऐसा साहस करना आत्म-घातक है। इसी कारण इन प्रलोभनोंके साथ युद्धमें पराजय स्वीकार कर जो मैंने भाग छूटनेका विचार किया वह बहुत ही अच्छा किया। यह बात मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि मुझे सांसारिक सुखोंमें—विषय-भोगोंमें—लेश मात्र भी आ-सक्ति या मोह नहीं है। जिसके मुखको देख कर क्षणिक संसार-सुखोंके भोगनेकी लालसा जागृत हो और सच्चे सुखोंकी खोजके बदले निराशाकी यातना सहन करनी पड़े उससे मुझ जैसी निर्बल स्त्रियाँ जितनी दूर रह सकें उतना ही अच्छा है।

बहिन मणिमालिनी, जानती हूँ कि ये सब बातें स्त्रियोंके कहने या लिखने लायक नहीं हैं; तो भी निर्लज्ज होकर मैंने अपने ह्रदयकी सब बातें तुमसे कहदी हैं। ये बातें मैंने अपनी निर्बलता, सबलता या आत्माभिमान बतलानेकी गर्जसे नहीं लिखी हैं; किन्तु लाचार होकर मुझे यह प्रयत्न करना पड़ा है, जिससे कि व्यर्थ तर्क-वितर्क करके तुम्हें दुःख न उठाना पड़े। इस पत्रके लिखनेका एक यह भी साधारण कारण है कि मुझ पर तुम्हारा जो उज्वल प्रेम है उसका बदला मैं कभी नहीं चुका सकती। इस कारण तुम जैसी पवित्र ह्रदयकी बहिनसे ही जो मैं अपने

हृदयकी सब बातें खोल कर न कहूँ तो फिर कहूँगी ही किससे! और फिर ऐसा करनेसे मेरा जीवन मेरे लिए ही कितना दुःखरूप हो जायगा, इसकी तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकती। मेरा विश्वास है कि अपनी सच्ची मैत्रिणीसे कोई बातका छिपाना महान् पाप है।

बहिन, मुझे जो खास बातें कहना थीं उन्हें मैं निवेदन कर चुकी हूँ। अब एक बात और बाकी है; और वह यह कि मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ पहुँच गई हूँ और खूब आनन्दमें हूँ। श्रीयुत सेठ सुवर्णगुप्तकी कन्या नर्मदाके साथ मेरा पहलेका ही परिचय था, इस कारण कल दिन तुम्हारे घर पर अनायास ही हम दोनोंका मिलाप हो गया। उससे हमें बहुत आनन्द हुआ। मैं नर्मदाके साथ ही पालखीमें बैठ कर यहाँ चली आई हूँ। नर्मदा बहुत बुद्धिमती स्त्री है। वह मुझे बहुत ही प्यार करती है। हृदयसे चाहती हूँ कि शासनाधीश उसका तुम्हारा और जीवमात्रका कल्याण करें।

तुम्हारे स्नेहकी भिखारिणी—

दुःखिनी रत्नमाला"

सोलहवाँ परिच्छेद।

मणिमालिनीकी कामना।

मणिमालिनीने रत्नमालाके रहस्य भरे पत्रको कोई तीन चार बहुत ध्यान पूर्वक पढ़ा; परन्तु उसे जान पड़ा कि कुछ बातोंको वह अब भी स्पष्ट नहीं जान सकी है। उसने फिर उस पत्रको बार बार उलट पलट करके देखा। अन्तमें जब वह सब बातोंको सिलसिलेवार समझ गई तब पत्रको उसने एक ओर रख दिया। पत्रको रख देने पर भी वह उस परसे अपनी दृष्टिको न हटा सकी। कारण इस समय उसके मस्तिष्कमें नाना चिन्ताओंका प्रखर वेग बड़े जोरकी दौड़ लगा रहा था। यह देख कर शायद पाठक आश्चर्य करें कि इस पत्रमें ऐसी क्या खूबी थी जो उसका मणिमालिनीके हृदय पर इतना अद्भुत प्रभाव पड़ा। हम इस बातको स्वीकार करते हैं कि इस पत्रमें न कोई प्रतिभाशाली कविके योग्य कवित्त्व था, न श्रेष्ठ उपन्यासकारके योग्य रस-वर्णता थी, न साहित्यके सहृदय विद्वानों जैसी आलंकारिक रचना थी और न किसी धर्मोपदेशकके योग्य नीति या धर्मका उपदेश ही था। इस पर भी मणिमालिनीको उस पत्रमें सब कुछ जान पड़ा। उसने देखा कि जो रस, जो कवित्त्व, जो अलंकार, और जो उपदेश इस पत्रमें है वह संसारके किसी कवि या उपदेशककी वाणीमें नहीं मिल सकता। कोई कहे कि मणिमालिनीको ऐसा जान पड़नेका क्या कारण है। इसका उत्तर यह है कि प्रेमियोंके—स्नेहियोंके पत्रों और शब्दोंमें जो आकर्षण शक्ति होती है, जो चमत्कारिकता होती है उसे प्रेमियोंके सिवा कोई नहीं जान सकता। तब सवाल यह उठता है कि रत्नमालाके पत्रमें ऐसी क्या बात थी जिससे मणिमालिनी इतनी मंत्र-मुग्ध, इतनी

चकित हो गई; तो इस पर यह कहना है कि जिन्हें इस पत्रकी खूबी समझनेकी अन्यन्त उत्सुकता हो, उन्हें मणिमालिनीके जैसी दृष्टि और सहृदयता प्राप्त करनी चाहिए। कारण हृदयकी भाषाको हृदय ही स्पर्श कर सकता है—हृदय ही समझ सकता है। रत्नमालाकी भावनाओंको समझनेके लिए केवल बुद्धिसे ही काम नहीं चल सकता। उसके लिए स्नेह और सहृदयतासे पिघलनेवाले अन्तःकरणकी भी आवश्यकता है।

इस प्रकार विचार और चिन्तामें मणिमालिनीका बहुत समय बीत गया। अन्तमें जब वह विचार-निद्रासे जगी तब उसके शोक-मलिन मुख पर, घोर अँधेरी रातमें चमकी हुई बिजलीकी भाँति उज्ज्वल-स्निग्ध हँसीका प्रकाश दिखाई दिया। उसके मुँहसे अनायास ही निकल गया कि रत्नमाला, कोई चिन्ताकी बात नहीं है। जब कि तू अपने आप ही पकड़ा चुकी है तब मैं भी तुझे किसी तरह नहीं छोड़ सकती। यह नहीं जान पड़ता कि इस प्रकार बोल उठनेमें मणिमालिनीकी क्या मनष्कामना है—वह क्या कहना चाहती है।

अस्तु, थोड़ी देर बाद उसे कुछ और बात याद आ गई। उसने उस पत्रको उठा कर अपने आँचलसे बाँध लिया। इसके बाद उसने एक लंबी साँस लेकर मन-ही-मन कहा—प्राणनाथ, क्या करूँ, तुम इस समय मेरे पास नहीं हो! यदि तुम्हारा थोड़ा भी मुझे बल होता—आधार होता, तो मैं कुछ करके बतलाती; परन्तु अब उस कहनेसे कुछ लाभ नहीं है। जो हो, फिर भी कोई चिन्ताकी बात नहीं है। पींजरेमें आये बाद तो मैं पक्षीको कभी न उड़ने दूँगी। इतना कहते कहते मणिमालिनीका हृदय भर आया। आँखोंसे आँसू बह निकले। प्रिय-विरहने उसे बहुत ही बेचैन कर दिया। इसके बाद वह पतिप्राणा आँचलसे आँसू पोंछ कर घर बाहर चली गई।

सत्रहवाँ परिच्छेद।
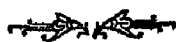
प्रयत्न।

मणिमालिनीने स्थिर किया कि चाहे कुछ भी हो पींजरेमें आये बाद तो मैं पक्षीको कभी न उड़ने दूँगी। परन्तु रत्नमाला-सदृश स्वाधीन पक्षीको पींजरेमें बन्द करना ही पहले बहुत कठिन है। उसे किस तरह पकड़ कर फँसाना चाहिए। मैं रह गई अकेली, सो किसी दूसरेकी सहायताके बिना कर भी क्या सकती हूँ। आज प्राणनाथ होते तो मुझे इस कामके पूरा कर देनेमें कुछ भी विलम्ब न लगता। तो भी मणिमालिनी कोई साधारण स्त्री न थी जो ऐसी तुच्छ असुविधाको देख कर निराश हो जाती। वह इसके लिए मन-ही-मन अनेक उपायोंको सोचने लगी। आखिर उसने अपने ससुरसे मिल कर कोई उपाय करना स्थिर किया; पर साथ ही लज्जासे आरक्त हुए मुखने मणिमालिनीके इस मनोरथमें बाधा डाल दी। उसने सोचा—अभी मुझे कुछ समय तक और राह जोहनी चाहिए। उसके बाद कोई प्रयत्न करना अच्छा होगा। इस बीचमें यदि स्वामी आ जायँ तो सबहीसे उत्तम है। उनके आनेसे मुझे बड़ा सहारा मिल जायगा। परन्तु स्वामी इस समय कहाँ होंगे! मणिभद्र तो वीरप्रभुकी आज्ञा लेकर घर लौट आये और वे अब तक क्यों नहीं आये! इसका कारण जाननेके लिए वह बहुत ही घबरा उठी। अब तक वह अपने स्वामीके सम्बन्धमें कई लोगोंसे पूछ चुकी है; परन्तु उसकी बातका सन्तोष-जनक उत्तर किसीने भी नहीं दिया। किसीने कहा कि सुभद्र तो दीक्षा लेकर मुनियोंके साथ विहार कर गये हैं। किसीने कहा कि उनका दीक्षित हो जाना तो अब तक सुननेमें नहीं

आया; परन्तु इतना अवश्य है कि कल शामसे ही उनका कोई पता नहीं है। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वे कहाँ चले गये। इन सब बातोंको सुन कर पतिप्राणा विरहिणी मणिमालिनीके हृदयमें जो उद्वेग, जो चिन्ता हुई उसे जिस पर ऐसा कभी प्रसंग पड़ा है वही स्त्री समझ सकती है।

इतने भारी दुःखके आवेगको भी संयत करके मणिमालिनीने स्थिर किया कि अब लज्जा करनेसे कोई लाभ नहीं है। ससुरजीसे मिल कर पक्षीको पींजरेमें पूरनेका कोई उपाय करना चाहिए। रत्नमाला-सदृश स्वर्गीय पक्षी जब स्वयं ही पींजरेमें बद्ध होनेके लिए तैयार है तब उसे उड़जाने देना किसी तरह ठीक नहीं है। इस एक ही पक्षीके कारण यह संसार नन्दनवन बन जायगा।

इसके बाद मणिमालिनी अपनी एक सखीके साथ ससुरके पास गई; और उनसे मणिभद्र तथा रत्नमालाके सम्बन्धमें जो कुछ बातें कहनी थीं वे सब उसने कहदीं। इसके सिवा उसने कहा कि रत्नमाला और मणिभद्रका हृदय एक दूसरेके हृदयमें स्वभावसे ही इतना मिल गया है कि उनका ब्याह हो जानेसे अपने कुल और धर्मकी बहुत ही उन्नति होगी और कीर्ति बढ़ेगी। वसुभूतिकी भी बड़ी इच्छा है कि रत्नमालाका ब्याह हो जाय। उनसे मिल कर आप इस सम्बन्धमें बात-चीत करेंगे तो मुझे विश्वास है कि वे भी हमारे घरमें अपनी लड़की देनेके लिए किसी प्रकारका संकोच नहीं करेंगे। इन सब बातोंको समझानेके लिए मणिमालिनीको कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा। समन्तभद्र थोड़ेमें ही सब बातें समझ गये। इसके बाद ही वे वसुभूतिके पास गये और उनसे ये सब बातें उन्होंने कह दीं। साथ ही रत्नमालाके पत्रका हाल भी उन्होंने कह सुनाया। यह जान कर बूढ़े वसुभूतिको बहुत आनन्द हुआ कि रत्नमाला स्वयं ही ब्याह करनेको तैयार है। परन्तु

सहसा उन्हें यह निश्चय नहीं हुआ कि रत्नमाला सचमुच ही ब्याह करना पसन्द करेगी । कारण रत्नमालाके हृदयकी दृढ़ताका उन्हें पहले ही पूर्ण अनुभव हो चुका था ।

दोनों कुछ सलाह करके धनदत्त सेठके पास गये । उन्होंने धनदत्तसे रत्नमाला और मणिभद्रके सम्बन्धकी सब बातें कह सुनाई । वसुभूति और समन्तभद्र चाहते थे कि अच्छा हो यदि धनदत्त प्रभुसे कह कर रत्नमाला और मणिभद्रकी दीक्षा रुकवादें । इतना ही नहीं; किन्तु वे यह भी चाहते थे कि इन्हें ब्याहकी प्रभु द्वारा आज्ञा मिल जाय और फिर वे किसी प्रकारका संकोच या इन्कार न कर ब्याह करना स्वीकार करलें । मोह-वश इन्हें इतना भी खयाल न रहा कि जिस भव्यके हृदयमें दीक्षा लेकर शासन सेवार्थ आत्मोत्सर्ग कर देनेकी अत्यन्त उत्कट भावना है उसे क्या स्वयं भगवान दीक्षा लेनेसे मना करेंगे ! उनके हृदयमें सन्तान-प्रेम इतना अधिक था कि उसके कारण वे नहीं चाहते थे कि उनकी सन्तान शासन-सेवार्थ अपना जीवन समर्पण करे । उनकी ऐसी इच्छा होनेका सन्तान-स्नेहके सिवा कोई कारण न था । इसके सम्बन्धमें किसी दूसरे कारणकी कल्पना करनेसे, प्रभुके प्रति जो उनकी अचल भक्ति है उस पर अन्याय होगा ।

इसके बाद वसुभूति, समन्तभद्र और धनदत्त जेतवनमें प्रभुके पास गये । उस समय भगवान अपने पवित्र चरित शिष्योंके मध्य विराजे हुए थे । वहीं पर मणिभद्र भी एक मुनिके पास बैठा हुआ हृदयमें प्रभुके पवित्र जीवनकी स्तुति कर रहा था । आगत तीनों धनिक प्रभुके चरणोंमें नमस्कार कर अपने योग्य स्थान पर बैठ गये । इसके थोड़ी देर बाद प्रभु कहीं अन्यत्र जानेके लिए तैयार हुए । यह देख कर धनदत्तने प्रभुसे कुछ प्रार्थना करना चाहा । प्रभु अपनी स्निग्ध-उज्ज्वल-सुधासम दृष्टिसे

अपने एक शिष्यकी ओर निहार कर वहाँसे चले गये। प्रभुकी इस दृष्टिमें क्या गंभीर अर्थ था उसे धनदत्त उसी समय समझ गये।

अब यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि भगवानने मणिभद्रकी आत्म-चिकित्सा करनेका भार इस अर्थपूर्ण दृष्टि द्वारा अपने एक शिष्य पर डाला था। भगवानने इतने दिनोंके-आचरण-स्वभाव-विचार आदिके द्वारा मणिभद्रको अच्छी तरह कसौटी पर कस लिया था। अन्तमें इन लोगोंके सामने मणिभद्रको बुला कर उन मुनिने अत्यन्त कोमल और मधुरतासे कहा—"वत्स मणिभद्र, जबसे तुम यहाँ आये हो तमीसे मैं तुम्हारे आत्माकी चिकित्सा करता चला आ रहा हूँ। मुझे अब इसमें जरा भी सन्देह नहीं रह गया है कि तुम्हारा आत्मा बहुत ही उज्ज्वल और उच्च वातावरणमें विचरनेवाला है। यदि तुम इस समय दीक्षा लेकर प्रभुके शासनकी सेवा करने लगो तो तुम्हारे द्वारा अपना और संसारका बहुत ही कल्याण हो; परन्तु यह जान कर तुम्हें कष्ट होगा कि अब तक तुम्हारी दीक्षाका समय नहीं आया है। जब तक तुम्हारी काललब्धि न आयगी तब तक तुम्हें संसारमें रह कर उसकी अपेक्षा करनी होगी। मैं यह अच्छी तरह समझ चुका हूँ कि तुम्हारा हृदय अन्य साधारण संसारियोंके जैसा निर्बल नहीं है और इसी कारण यह कभी आशा नहीं की जा सकती कि तुम अपना शुद्ध आत्म-बल विषयोंके प्रलोभनमें पड़ कर गँवा बैठोगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम संसारमें रह कर भी अपना बहुत कुछ आत्म-हित साधन कर सकोगे। स्पष्टरूपसे यह कहा जा सकता है कि जब तक तुम अपने पिता-भाई-बन्धुओंके मोह-पाशसे न छूट सको तब तक तुम्हें संसारमें रह कर ही अन्य अज्ञानी प्राणियोंको बहुमूल्य बातें सिखा कर उन्हें सत्पथ पर लगाना चाहिए। तुम्हारा निर्माण ही इसी लिए हुआ है। परमोपकारी वीरप्रभुका पवित्र जीवन तुम्हारे लिए इस काममें आदर्श है। जाओ, प्रिय वत्स जाओ; तुम्हें मेरा आशी-

वाद है कि तुम संसारमें रह कर भी ऐहिक मोह-बन्धनसे जल-कमलकी भाँति अलिप्त रह कर आत्माको अधिक शुद्ध बनाओ; माता-पिता सगे-सम्बन्धियोंके प्रेमपूर्ण हृदयको निर्दोष पवित्र आचार-विचारसे सन्तुष्ट करो; और इस समय जो तुम्हारे भाव हैं उन्हें दिन दिन और भी अधिक उच्च-उदार बनाते हुए अन्तमें दीक्षा लेकर अपना और जगत्का कल्याण साधन करो। " मणिभद्र सिर झुकाये हुए इन सब बातोंको सुनता रहा। उसने प्रभुके शिष्यकी आज्ञाको प्रभुकी ही आज्ञा समझ कर उसे मान भी लिया। इससे वसुभूति, समन्तभद्र और धनदत्तको बहुत ही आनन्द हुआ। इसके बाद वे जेतवनसे वापिस लौट आये। धीरे धीरे यह बात सारी श्रावस्तीमें फैल गई। रत्नमालाने भी ये सब बातें सुनीं। उसने सोचा कि अब जो मैं पहलेकी ही भाँति पिताजीके प्रेम-बन्धनको निर्दय होकर तोड़नेका यत्न करूँगी—दीक्षा लेनेको तैयार होऊँगी—तो निस्सन्देह मुझे भी मणिभद्रके जैसा ही उत्तर मिलेगा। इस कारण अब पिताजीके जीते जी तक तो चाहे जिस तरह हो इस समयको बिताना ही उचित है।

वसुभूति अब अपनी पुत्री रत्नमालाके साथ धनदत्तके घर पर ही रहते हैं। दोनों एक ही स्वभावके बहुत सज्जन पुरुष हैं। अपने समयको सदा आनन्द और धर्म-ध्यानमें बिताते रहते हैं। वीरप्रभु भी अब जेतवनसे कहीं अन्यत्र विहार कर गये हैं। उनके पवित्र चरण-स्पर्शसे आज श्रावस्तीकी धूल भी सिर पर चढ़ाने योग्य हो गई है। समय पाकर जब रत्नमाला अपने पिताके पास आती, उस समय वसुभूति प्रसंग लाकर उसे मणिभद्रके पवित्र-सरल-सुन्दर स्वभाव, श्रेष्ठ कुल, विद्या-बुद्धि, धन-सम्पत्ति आदिके सम्बन्धमें नाना तरहकी बातें समझाते; और प्रभुकी उसके प्रति जो सहानुभूति है, उसका वर्णन करते। इस प्रकार अनेक तरहके प्रलोभनोंसे वे रत्नमालाको ब्याहके लिए परोक्ष-प्रत्यक्ष प्रेरणा करते

थे; परन्तु रत्नमालाके हृदय पर इन प्रलोभनों और प्रेरणाओंका बिल्कुल भी असर न पड़ा। वह किसी प्रकार ब्याह करनेको सम्मत न हुई। जब जब वसुभूति उसके सामने ब्याहकी चर्चा छेड़ते थे तब तब वह यह कर उस बातहीको उड़ा देती थी कि पिताजी, अभी तो बहुत समय है। एक-दो वर्ष और बीतने दीजिए, फिर मैं ब्याहका निश्चय कर डालूँगी। उसे मणिभद्रके साथ थोड़ी ही देर तक बात-चीत करनेसे दृढ़ निश्चय हो गया था कि यदि वह ब्याह करे और वह खास मणिभद्रके साथ, तो उसके आ-जन्म स्थिर किये हुए पवित्र संकल्पकी कभी सिद्धि नहीं हो सकती। जिसके एक ही बारके दर्शन-स्पर्शसे जो रोमांचित हो उठी थी—जो अपनेको न सँभाल सकी थी—वह दुर्बल हृदयकी स्त्री ऐसे पुरुषके साथ चिर समय तक एकान्त सहवासमें रह कर क्या अपने संकल्पको सुरक्षित रख सकेगी, कभी नहीं। यह निस्संदेह है कि ऐसे संयोगोंमें, जो हृदयको दुर्बल बनानेवाले हैं, कभी सफलता नहीं हो सकती। इन सब बातोंको सोच-विचार करके रत्नमालाने स्थिर किया कि इसी तरह जो दो-चार वर्ष और बीत जायँ तो फिर मैं स्वाधीन हो जाऊँगी और फिर मुझे कोई बातकी चिन्ता न रह जायगी। और इसके बाद दीक्षा लेकर अपने संकल्पकी साधनामें भी कोई प्रकारकी विघ्न-बाधा उपस्थित न होगी; परन्तु उसका यह संकल्प सफल न हो सका।

एक दिन बड़ी घबराहटके साथ वसुभूतिने रत्नमालासे कहा—बेटी, मेरी एक प्रार्थना तुझे स्वीकार करनी ही पड़ेगी। उसे बिना स्वीकार किये तेरा छुटकारा नहीं है। और जो इतने पर भी तू मेरी प्रार्थना स्वीकार न करेगी तो समझ तू अपने बूढ़े पिताको सदाके लिए खो बैठेगी। यदि तू ब्याह न करेगी तो मैंने अपने लिए दो ही मार्ग स्थिर किये हैं। सो या तो मैं आत्म-घात करके मर मिटूँगा या घर-बार छोड़ कर जंगल जंगल भटकते-फिरते जीवन समाप्त कर दूँगा! पिताजीके इन दुःख भरे उद्गारोंको

पितृभक्त रत्नमाला न सह सकी । उसका हृदय थर्रा उठा । उसे इस बातका कभी विचार भी न आया था कि उसके लिए पिताजीको इतना भारी कष्ट सहना पड़ेगा ! वसुभूतिके शब्दों और उनमेंसे निकलते हुए हृदयको हिला देनेवाले भावोंका रत्नमालाके हृदय पर बहुत ही गहरा असर पड़ा । थोड़ी देर तक तो वह पिताजीके कातर और उत्सुक नेत्रोंकी ओर देखती रही, पर फिर ज्यादा देर तक उससे न रहा गया—उसके हृदयका बाँध टूट पड़ा । वह एक साथ रो पड़ी । वह यह विचार कर काँप उठी कि मुझे अपने जीवन भरके ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञाको तो पालना ही पड़ेगा ! वह कुछ स्थिर नहीं कर सकी कि अब उसे क्या करना चाहिए । यदि वह पिताकी आज्ञाका पालन करती है तो उसे अपना संकल्प उठा कर ताकमें रख देना पड़ता है—उसे बिना तोड़े उसके लिए कोई गति ही नहीं है; और यदि अपना संकल्प दृढ़ रखना चाहती है तो पिताजीकी हत्या होती है ! अन्तमें रत्नमाला हाथ जोड़ कर पिताजीसे कुछ कहना चाहती थी कि इतनेमें वसुभूतिने कुछ स्वस्थ होकर कहा— बेटी, तू चाहे कुछ भी कर, परन्तु तुझे ब्याह तो करना ही पड़ेगा; और वह भी मणिभद्रके साथ ! बूढ़के ये अन्तिम वाक्य बहुत कड़े होने पर भी दृढ़ताको लिये हुए थे । इस कारण रत्नमालाके हृदय पर उनका बहुत गहरा असर पड़ा । परन्तु तो भी रत्नमाला रत्तीभर भी न घबराई । उसने बहुत धीरे पर दृढ़ताके साथ कहा—“ पिताजी, आपकी आज्ञाको मैं स्वीकार करती हूँ; परन्तु इसके साथ ही मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिए । वह यह कि ब्याहके पहले मुझे एक बार मणिभद्रके साथ बात-चीत करनेकी आज्ञा दीजिए; और जब तक मैं स्वयं मणिभद्रके साथ ब्याह करनेकी सम्मति न दे दूँ तब तक आप भूल कर भी इस विषयकी चर्चा न करें । ” रत्नमालाकी यह विचित्र प्रार्थना सुन कर वसुभूतिको कुछ आश्चर्य हुआ और साथ ही कुछ क्रोध भी आया; परन्तु उनने सोचा कि जब रत्नमाला मेरी आज्ञा

मान लेनेको तैयार है तब उसकी इच्छाके अनुसार उसे सम्मति न देना उचित नहीं है। इस प्रकार विचार कर उनने रत्नमालाको सम्मति देदी। रत्नमाला क्यों एकदम ब्याह करनेको तैयार हो गई, मणिभद्रके साथ वह क्या बात-चीत करना चाहती है, और क्यों वह अपने संकल्पसे शिथिल होना चाहती है इन सब बातोंका उत्तर थोड़ेमें नहीं दिया जा सकता। इसके लिए इतना ही कहना है कि पाठकोंको धीरजके साथ आगेके परिच्छेदोंको पढ़ कर उनमें इन प्रश्नोंके उत्तर ढूँढ़नेका यत्न करना चाहिए।

अठारहवाँ परिच्छेद ।

पुनर्दर्शन ।

सन्ध्या अब हुई है; परन्तु पूर्णिमाका चाँद स्त्रीके पीछे पागल हुए वरकी भाँति बहुत देर पहले ही आकाशरूपी ब्याह-मण्डपमें आ गया है। सूर्य अस्ताचलके शिखर पर पहुँच कर पश्चिम समुद्रमें डूबना ही चाहता है। परन्तु जिस उदयाचलने उसे जन्म दिया था उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करनेके लिए वह इस दशामें भी उस पर फिर एक बार दृष्टि डालनेके लोभको न रोक सका। सच है, मरते मरते भी किसका मन अपनी जन्मभूमिके दर्शन करनेको उत्सुक न हो उठेगा! सूर्यके निस्तेज होनेका भी यही कारण जान पड़ता है कि वह अपनी जन्मभूमि पर अन्तिम कातर दृष्टि डाल कर उससे उस दिनके लिए आखिरी विदा माँग रहा है। सूर्यको इस भाँति निस्तेज और निर्बल देख कर भी उसके रहने तक आकाश चन्द्रमाको पूर्ण स्वाधीनता नहीं देना चाहता। चन्द्रके ब्याह-मण्डपमें सूर्यको देख कर लज्जा वश तारा-महिलायें अब तक वहाँ आनेका साहस न कर सकीं। उनमें एक-दोको सूर्यका यह अन्याय आचरण बहुत ही बुरा लगा। इस कारण वे लज्जाकी कुछ परवा न कर सूर्यको उलहना देनेके लिए सन्ध्यारुण गगन-मण्डपमें आकर खड़ी हो गईं।

धनदत्त सेठके विशाल प्रासादके पास ही जो एक सुन्दर उद्यान है उसमें एक बड़ा भारी स्वच्छ जलका भरा हुआ सरोवर है। उसके किनारे पर एक विशाल भव्य गृह बना हुआ है। इस संध्या समय इसी गृहकी छत पर बैठी हुई रत्नमाला अपने पिताके साथ बात-चीत कर रही थी। इसी समय एक नौकरने आकर वसुभूतिको खबर दी कि मणिभद्र नीचे आपका रास्ता

देख रहे हैं। वसुभूति तुरत नीचे आकर मणिभद्रको बड़े आदरके साथ ऊपर छत पर लिवाले गये। इसके बाद कुशल प्रश्न हो चुकने पर वसुभूतिने मणिभद्रसे समन्तभद्र, रत्नभद्र तथा उनके घर सम्बन्धकी बहुतसी बातें पूछीं और उनका सन्तोष-जनक उत्तर पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। इसके थोड़ी देर बाद अचानक कोई बात याद हो उठनेका भाव बता कर वसुभूति तुरत उठ खड़े हुए और मणिभद्रसे बोले— मणिभद्र, मैं अभी वापिस आता हूँ, तब तक तुम यहीं ठहरना। कहीं जाना नहीं। इतना कह कर वसुभूति वहाँसे चल दिये। उन्होंने मणिभद्रके उत्तरकी कुछ अपेक्षा न की।

उस समय सूर्य अस्त हो चुका था। रात्रि पूर्ण चन्द्रकी उज्ज्वल-स्निग्ध ज्योत्स्नामयी सुधा-वर्षामें स्नान कर स्वच्छ-श्वेत साड़ी पहने हुए थी। सन्ध्याका मृदु-मधुर वायु नाना तरहके सुन्दर फूलोंकी मनोहर सुगन्ध ग्रहण कर दिग्-दिगन्तमें पहुँचनेका यत्न कर रहा था। कहीं कहीं कोकिलायें अपने पंचम स्वरसे मधु-वर्षा द्वारा हृदयकी गहराईमें एक अव्यक्त आकांक्षा जागृत कर उड़ी जा रही थीं।

वसुभूतिको गये हुए बहुत देर हो गई। रत्नमाला और मणिभद्र नीची नजर किये वहीं बैठे रहे। उनके मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकला। यहाँ तक कि दोनोंमेंसे किसीको किसीके मुँहकी ओर देखनेका साहस तक भी न हुआ। बाह्य जगतकी मनोमोहिनी सुन्दरता भी उन पर अपना कुछ प्रभाव न डाल सकी। प्रकृतिकी भाव-शान्ति-सौंदर्यमयी मूर्ति आज उनके सामने सूनीसी जान पड़ी। न जाने क्यों आज उनकी इच्छा एक बार भी, शुभ्र ज्योत्स्नाके समागमसे पुलकित हुई यामिनीको देखना तक पसन्द नहीं करती। उनके चेहरे परसे जान पड़ता है कि वे आज बाह्य जगतमें नहीं हैं; किन्तु भाव-राज्यके किसी एकान्त स्थानमें बैठे हुए हैं। उनका हृदय इस एकाग्रताके साथ आज जिस

विषयका अनुभव कर रहा है उसे हम सरीसे बाह्य दृष्टिवाले जन कैसे कह सकते हैं !

इसी दशामें उनका बहुत समय बीत गया । अन्तमें रत्नमालाने बड़ी कठिनतासे चिन्ताके आवेगको रोक कर मणिभद्रके मुँहकी ओर देखा । उसके इस देखनेमें लज्जा और उत्सुकताकी छाया स्पष्ट झलक रही थी । इतने पर भी मणिभद्रकी दृष्टि ऊपरकी ओर न उठी । वह सिर झुकाये हुए ही बैठा रहा। अगत्या तब रत्नमालाने मणिभद्रकी समाधि भंग करनेका साहस कर कहा—मणिभद्र, तुम्हें उस दिनकी बातें याद हैं !

रत्नमालाके शब्दोंको कानोंसे टकराते ही मणिभद्रकी शान्ति भंग हुई । उसने अपनेको सँभाला । इसके बाद बड़ी कठिनतासे अपने भावोंके रोक कर उसने उत्तर देनेका यत्न किया; परन्तु उसे नहीं सूझ पड़ा कि वह क्या उत्तर दे । उसी प्रकार उसे चुप-चाप बैठे रहना भी बहुत बुरा जान पड़ा। रत्नमालाने मणिभद्रके मनकी उस समयकी स्थितिको जान कर एक युक्ति की । वह अपनी युक्तिका उपयोग करना ही चाहती थी कि इतनेमें मणिभद्र बोला—रत्नमाला, वे सब बातें मुझे अब तक अच्छी तरह याद हैं; परन्तु अन्तर केवल इतना पड़ गया है कि अब मैं वह मणिभद्र नहीं रहा । इतना कह कर मणिभद्रने अपनी नम्र-सलज्ज दृष्टि रत्नमालाके मुख पर डाली। रत्नमालाकी ओर देखते ही उसका उस दिनका सुन्दर चित्र मणिभद्रके हृदय पर अंकित हो गया । उसने अपनी मानसिक दृष्टिसे देखा तो उसे जान पड़ा कि अहा ! यह वही पवित्र देवी मूर्ति है जिसने मुझे उस दिन आधी रातके समय कैदखानेसे छुड़ाया था ! यह वही मूर्ति है जिसके असम साहस, और विनीत व्यवहारको देख कर एक बार मैं चकित और मुग्ध बन गया था ! यह वही उज्ज्वल प्रतिमा है जिसके सुन्दर मुखके दीप्त लावण्यको अस्त होते हुए चन्द्रमाकी अस्पष्ट चाँदनीमें देख कर मै आश्चर्य-सागरमें मग्न हो

गया था ! यह वही देवी है जिसके सुन्दर नेत्र, जिसकी स्वर्गीय चितवन और घन-कृष्ण केश-राशिको देख कर मैं अपने आत्माको भी भूल गया था ! क्या वही यह देवी मूर्ति इस समय मुझसे बात-चीत कर रही है ! इतने समय बाद आज अचानक ही फिर मैं इस अलौकिक रूप-राशिको देख सका हूँ। इस प्रकार विचारके साथ ही माणिभद्र मानसिक-नेत्रोंसे उस रातमें देखी हुई प्रतिमाके देखनेका यत्न करता है, कि इतनेमें रत्नमालाने कुछ आश्चर्य और सन्तोषकी अव्यक्त सहानुभूतिको दिखाते हुए कहा:—" मणिभद्र, कुछ नहीं समझ पड़ता कि तुम पहले कैसे थे और अब तुममें क्या परिवर्तन हो गया है ! मणिभद्र, क्या तुम्हें उस दिनकी बात याद है कि जब तुम कारागारसे छूट कर जानेको तैयार थे उस समय तुमने मुझसे क्या कहा था ? तुमने कहा था न कि रत्नमाला, फिर तुम्हारे दर्शन कब होंगे ? और इसके उत्तरमें मैंने जो कुछ कहा था वह भी तुम्हें स्मरण है क्या ? उस समय तुम्हारे इस पूछनेसे मुझे बहुत आश्चर्य हुआ था और उसी आश्चर्यके कारण मैं तुम्हें निश्चित उत्तर न दे सकी थी। उस समयके दृश्यकी तुम अपने हृदयमें अच्छी तरह कल्पना कर सकते हो। अब इस समय मैं तुमसे केवल यही पूछना चाहती हूँ कि उस समय तुमने मेरे पुनर्बार देखनेकी इच्छा किस लिए की थी। उसका जो यथार्थ कारण है उसे ही मैं सुनना चाहती हूँ।

माणिभद्रने कहा—" अच्छी बात है रत्नमाला, तब सुनो कि मैंने तुम्हें एक बार देख कर फिर क्यों देखनेकी इच्छा की थी। अब इस विषयमें किसी प्रकारकी लज्जा या संकोच न करके जो सच्ची बात है वही मैं तुम पर प्रगट कर देना चाहता हूँ। रत्नमाला, उस समय मेरे मनमें जो एक अव्यक्त सुखकी इच्छा जागृत हुई थी और उसीके वश हो मैंने जो तुमसे पुनर्बार दर्शन देनेकी प्रार्थना की थी वह इच्छा—वह अभिलाषा—अब मेरे हृदयमें बिल्कुल नहीं रही है—उसका नाम निशान भी अब बाकी

नहीं रह गया है। हाँ केवल कुछ कुछ उसकी स्मृति बच रही है और संभव है कि थोड़े समयमें वह भी समूल नष्ट हो जायगी। रत्नमाला, जब तक मैंने वीरप्रभुका आश्रय न ले पाया था तब तक उस रातको चन्द्रमाके अस्पष्ट प्रकाशमें देखे हुए तुम्हारे—नहीं, मेरा उद्धार करनेवाली देवीके सुन्दर मुखने मेरे हृदयको क्षुब्ध कर दिया था। और सच पूछो तो रत्नमाला, तुम्हारे निष्कलंक सुन्दर मुख-चन्द्रमाको सतृष्ण नयनोंसे देखनेकी किसे इच्छा न होगी! परन्तु रत्नमाला, वीरप्रभुकी कृपासे अब वह सब इच्छा नष्ट हो गई है। इस कारण रत्नमाला, उस दिन क्षणिक चंचलताके वश होकर मैंने जो तुम्हारा अपराध किया है-मेरे पवित्र कुलको कलंकित करनेवाला जो आचरण किया है—उसका मुझे हृदयसे दुःख है। हृदय चाहता है कि अपने इस अपराधकी मैं तुमसे क्षमा माँगूँ। और इसी कारण एकान्तमें मिल कर तुमसे क्षमा माँगनेका बहुत समयसे मैं मौका देख रहा हूँ। और पुण्यसे आज मुझे वह अवसर मिल भी गया है। इस लिए विश्वास है कि तुम मुझे अवश्य क्षमा कर दोगी। तुम्हारे पिताकी कृपासे आज मुझे जो यह शुभ अवसर मिला इसके लिए मैं उनका अत्यन्त ही कृतज्ञ हूँ। अब तो रत्नमाला, हृदयमें एक ही उच्चाकांक्षा है, और वह यह कि इस माया-मोहमय संसारका परित्याग कर प्रभुकी चरण छायामें आत्म-हितके साथ साथ अपने जीवनको विश्वके कल्याणार्थ उत्सर्ग कर दूँ। कारण संसारके विकट मायाजालमें फँसनेकी वासना हृदयसे अब सर्वथा नष्ट हो गई है।"

मणिभद्रकी बातें सुन कर रत्नमालाके चिर समयकी चिन्ताओंसे विषण्ण मुँह पर सहसा सन्तोषकी शान्त-ज्योत्स्ना खिल उठी। उसने जिस सन्तोषके साथ बोलना आरंभ किया उससे स्पष्ट जान पड़ा कि मानों उसके हृदय परसे भारी बोझेका बहुत भार कम गया है। उसने कहा—"मणिभद्र, सच समझो कि मुझे याद नहीं पड़ता कि तुमने मेरा कोई

अपराध किया है और न इस बातसे इस समय हमें कोई सम्बन्ध ही है। अस्तु, थोड़ी देरके लिए यह मान भी लो कि तुमने मेरा अपराध किया है तो भी उसे क्षमा कर देनेमें मुझे किसी बातका संकोच नहीं है। अच्छा, इस बातको जाने दो और यह बतलाओ कि तुमने जो वीरप्रभुकी शरण लेने और संसार त्याग कर वैराग्य स्वीकार करनेका दृढ़ संकल्प किया है उसे सार्थक किस प्रकार कर सकोगे। मैंने सुना है कि जब तक तुम्हें तुम्हारे पिताजीकी आज्ञा न मिल जायगी तब तक तुम दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकते। और साथ ही मेरा विश्वास है कि तुम्हारे पिताजी अब बहुत बूढ़े हो चले हैं, इस कारण वे कभी आज्ञा न देंगे। और यह भी उचित नहीं है कि तुम उनके स्नेहपूर्ण कोमल हृदयको आघात पहुँचा कर चले जाओ। ऐसे संयोगोंमें बतलाओ तुम क्या करोगे—किस मार्गको स्वीकार करना उचित समझोगे ?

मणिभद्रने कहा—"रत्नमाला, तुम जो कुछ कहती हो वह ठीक है और यह भी संभव नहीं कि पिताजीकी बिना आज्ञा लिये मैं संसार छोड़ कर चल दूँ। रहूँगा तो मैं संसारहीमें, परन्तु केवल इतनी बातके लिए ब्याह करके गृही-धर्म स्वीकार करना कभी पसन्द नहीं करूँगा।" इतना कहते कहते मणिभद्रके आवेगपूर्ण नेत्र रत्नमालाके औत्सुक्यपूर्ण नेत्रोंके साथ मिल गये। मणिभद्रको जान पड़ा कि रत्नमालाके नेत्रोंमें अव्यक्त आँसू छलक आये हैं। इसके लिए वह थोड़ी देर तक कुछ विचार कर फिर बोला—"रत्नमाला, मैंने सुना है कि तुम्हारे पिताने भी तुम्हारे ब्याहके लिए दृढ़ संकल्प किया है और तुमने ब्याह न कर शासन-सेवार्थ आत्मोत्सर्ग करनेकी दृढ़ इच्छा प्रगट की है। तब तो तुम्हारे लिए भी मेरे ही सदृश संयोग उपस्थित है। बतलाओ, फिर तुम किस मार्गका आश्रय लोगी।"

रत्नमाला बोली—मणिभद्र, सच कहती हूँ, ब्याह करनेकी नाम मात्रके

लिए भी मेरी इच्छा नहीं है; परन्तु मेरे वशकी कोई बात नहीं । पिताजीका इतना अधिक आग्रह है कि मैं उनकी आज्ञा लाँघ नहीं सकती। पिताजीकी इस अवस्थामें उनके स्नेहपूर्ण कोमल हृदयमें मेरे कारणसे कोई प्रकारकी चिन्ता या ग्लानिको जब मैं देखती हूँ तो मुझे असह्य कष्ट होता है । इस कारण मुझे लाचार होकर ब्याह करना ही पड़ेगा। बिना ऐसा किये मेरे छुटकारेका कोई उपाय नहीं है । मणिभद्र, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ कि यदि तुम मेरे साथ ब्याह करना स्वीकार करो तो क्या कोई हानि होगी। कहनेको तो रत्नमाला जल्दीसे इन शब्दोंको कह गई, पर साथ ही लज्जाने उसे इतना निर्बल बना दिया कि उसे फिर ऊपर सिर उठाना ही कठिन हो गया। साथ ही उसके सुन्दर गालों पर अरुण प्रभा खिल उठी ।

रत्नमालाके वचनोंको सुन कर मणिभद्र तो भान ही भूल गया । बहुत देर तक वह चुपचाप ही बैठा रहा—उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकला। आखिर उसने बहुत नम्रतासे कहा—यह कैसे हो सकता है, रत्नमाला ! कारण न तुम ब्याह करना चाहती हो और न मैं ही उसे पसन्द करता हूँ । जिस भाँति तुमने दीक्षा लेकर आत्म-हित साधन करना स्थिर किया है उसी भाँति मेरा भी स्थिर संकल्प है। तब मैं नहीं समझ सकता कि मेरा तुम्हारा ब्याह कैसे हो सकता है। ऐसे बिना इच्छाके ब्याहसे तुमको और मुझे क्या लाभ होगा !

रत्नमालाने कुछ स्पष्टताके साथ कहा कि "इसी लिए तो मैं कहती हूँ कि तुम्हारे साथ जो मेरा ब्याह हो जाय तो फिर किसीको किसी प्रकारकी चिन्ता करनेका कोई कारण न रह जायगा।"

मणिभद्रने आश्चर्य भरे नेत्रोंसे रत्नमालाकी ओर देखकर कहा—"रत्नमाला, तुम्हारे आशयको मैं बिल्कुल नहीं समझ सका हूँ।"

रत्नमालाने तब आगे कहना आरंभ किया—"मणिभद्र, हम लोगोंके हृदयकी जो उच्च भावनायें हैं, वे तभी अखंडित और निर्मल बनी रह सकती हैं जब कि हम दोनों ब्याह कर परस्परमें प्रेमकी पवित्र गाँठसे बँध जायँ। और ऐसा करके ही हम अपने स्नेही पिता और कुटुम्बके लोगोंको सुखी-सन्तुष्ट कर सकते हैं। हम उन बातोंको अच्छी तरह समझ चुके हैं कि जिनके कारण हम अब तक ब्याह करनेको तैयार न हुए और न अब हैं। इस बातका रंचमात्र भी भय नहीं है कि हमारे पवित्र ब्याह-सम्बन्धसे हमारी पवित्र और उच्च भावनाओंको किसी प्रकारका धक्का लगेगा। मोक्ष-सुखकी इच्छा रखनेवाले विरक्त लोग जिस उद्देश्यसे ब्याह नहीं करते हैं उस उद्देश्यको तो हम ब्याह हो जानेके बाद भी सुरक्षित रख सकेंगे। और यह तब हो सकता है जब कि तुम्हारा और मेरा परस्पर ब्याह हो जाय। ऐसा किये बिना हम अपनी उच्च आकांक्षाओंको कभी सुरक्षित नहीं रख सकते। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रभुकी हम पर पूर्ण कृपा है और यह भी दृढ़ निश्चय है कि प्रभुकी उस कृपाके बलसे हम इस अग्नि-परीक्षामें बहुत ही सरलताके साथ उत्तीर्ण हो सकेंगे। तुम कुछ अधिक ध्यानसे मेरी इस सलाह पर विचार करोगे तो सब बातें खुलासा समझमें आ जायँगीं।

मणिभद्र अब रत्नमालाके भावोंको अच्छी तरह समझ गया। उसने थोड़ी देर तक और इस विषय पर उहा-पोह कर अपना विचार स्थिर कर लिया। इसके बाद उनमें और भी बहुतसी बातें होती रहीं। अन्तमें जाते समय मणिभद्रने रत्नमालासे कहा—" अच्छी बात है रत्नमाला, जैसा तुम चाहती हो वही होगा। देखता हूँ कि हम लोगोंके लिए संसार-वास करने और ब्याह करके गृहस्थियोंके जैसा बाह्य व्यवहार-सम्बन्ध बतानेके सिवा कोई छुटकारेका मार्ग नहीं है। अस्तु; हम लोग उदासीन रह कर बाह्य मनसे संसार-सम्बन्धी बातें करते रहेंगे। विश्वास है

कि हमारे उद्देश्यमें कोई प्रकारकी बाधा न आयगी । इस कारण रत्न-माला, मुझे तुम्हारे साथ व्याह करनेमें अब किसी प्रकारका संकोच नहीं है। अब प्रभुसे हमें यही प्रार्थना करनी चाहिए कि वे हमें इस अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिए आत्म-बल प्रदान करें। मुझे दृढ़ निश्चय है कि प्रभु हम लोगोंकी प्रार्थना सुन कर अवश्य हमारा उद्धार करेंगे।"

रत्नमालाने मणिभद्रकी हृदयसे कृतज्ञता स्वीकार कर कहा कि "अच्छा मणिभद्र, अबमें तुमसे आज्ञा लेती हूँ। आजसे इस संसारमें तुम्हारा और मेरा स्वार्थ अभिन्न हो गया है। आज हम लोग शारीरिक व्याह-सम्बन्धसे नहीं, किन्तु आत्म-विवाहसे एक हो रहे हैं। प्रभुसे हम लोग यही प्रार्थना करते हैं कि वे हमें ऐसा आशीर्वाद प्रदान करें, कि जिससे हम वास्तवमें जो व्याहके श्रेष्ठ गुण हैं उन्हें प्राप्त कर सकें और उससे उत्पन्न होनेवाले दुर्गुणोंसे निरंतर दूर रहें।" इतना कह कर रत्नमाला किसी प्रकारके उत्तरकी अपेक्षा न करके वहाँसे चल दी। मणि-भद्र वसुभूतिका रास्ता देखता हुआ और भी बहुत देर तक छत पर बैठा रहा। यह कहना कठिन है कि वह सचमुच ही वसुभूतिका रास्ता देख रहा था या अपने हृदयकी भावनोंकी चिकित्सा कर रहा था। इसके बाद वसुभूति वहाँ कब आये और मणिभद्रके साथ उनकी क्या क्या बातें-चीतें हुई उन सबका यहाँ उल्लेख उपयोगी नहीं जान पड़ता।

उन्नीसवाँ परिच्छेद।

आत्म-विवाह।

जब वसुभूति और समन्तभद्रने सुना कि रत्नमाला और मणिभद्रने ब्याह करना स्वीकार कर लिया है तब उन्हें जो आनन्द हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्हें अपने जीवन भरकी तपस्या सफल हुईसी जान पड़ी। और यह बात भी ठीक है कि जो सन्तान अपने माता-पिताके प्रेमके लिए अपने दृढ़ संकल्पों और जीवन तकको उत्सर्ग कर देती है —उनके अकृत्रिम प्रेमके सामने अपनी पराजय स्वीकार कर लेती है—उस प्रिय सन्तानसे किन माता-पिताको आनन्द, संतोष, शान्ति और सुख न होगा! रत्नमाला और मणिभद्रके ब्याहकी बात थोड़े ही समयमें सारी श्रावस्तीमें फैल गई। इस समाचारसे सारी नगरी आनन्दित हो उठी। सुभद्र भी फिर गुरु महाराजकी आज्ञा पाकर घर पर लौट आये। अपने प्रियतमको आये जान कर मणिमालिनीका नीरस हृदय लहलहा उठा। उसके सुखकी सीमा न रही। मणिमालिनीको यह जान कर और भी अधिक आनन्द हुआ कि अब उसकी इच्छा बहुत शीघ्र सफल होगी। उसे अपने मनोनीत पक्षीको पींजरेमें पूरनेके लिए जिसकी सहायता की अपेक्षा थी वह आ गया है और इसी कारण अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया है कि मैं अपने कार्यमें अच्छी सफलता लाभ कर सकूँगी।

यह पहले लिखा जा चुका है कि वसुभूति और समन्तभद्र अच्छे प्रतिष्ठित धनी हैं। और इसी कारण उन दोनोंने अपनी प्यारी सन्तानके ब्याहमें खूब उत्साहके साथ अपार धन खर्च करनेका निश्चय किया है।

भारतवर्षके प्रायः सब ही शहरों और गाँवोंके स्वधर्मी बन्धुगण आमंत्रित किये गये। वसुभूति और समन्तभद्रकी उत्कट इच्छा है कि देश-विदेशसे स्वधर्मी बन्धुगण पधार कर वे अपने चरणोंसे उनके आँगनको पवित्र करें, उनकी सेवार्थ वे अपना धन खर्च कर उसे सार्थक करें। उनकी इच्छा बहुत अंशोंमें सफल भी हुई। बहुतसे पाहुनोंने आकर उनके उत्साहको बढ़ाया। उनके भव्य प्रासाद आनन्द-ध्वनि और अतिथियोंकी हल-चलके कारण सदा मुखरित रहने लगे। कोई एक महीने तक इस ब्याहकी धूम-धाम रही। पाहुनोंको बड़े आदर-सत्कारके साथ विदा किया गया। हजारों गरीब-अनाथ-दुखियोंका दुःख-दारिद्र दूर किया गया। सबका यथायोग्य दान-मानादिसे सत्कार किया गया। बहुतोंको पारितोषिक दिया गया। कहनेका मतलब यह कि वर और कन्या-पक्षकी ओरसे व्यावहारिक और धार्मिक कामोंके लिए धन खर्च करनेमें कोई प्रकारकी कसी न की गई।

वसुभूति और समन्तभद्रको इस बातसे बहुत ही प्रसन्नता हुई कि उनकी आज्ञाको मान कर रत्नमाला और मणिभद्रने गृहीधर्म स्वीकार कर लिया और अब वे मनोयोगपूर्वक अपने कुटुम्ब और समाज-संबंधी आचार-विचारोंका निर्वाह करने लगे। अपनी प्यारी सन्तानको सब तरह सुखी देख कर थोड़े दिन बाद दोनों सेठोंने संसार-सम्बधी सब कामोंको छोड़ दिया और अब वे केवल धर्म-ध्यानमें ही सदा रत रहने लगे। वे प्रति दिन साधु-संघके पास जाकर सारे सारे दिन तत्त्व-चर्चा और जप-तप-पूजा-प्रभावनामें समय विताने लगे। उनके इस प्रकार धर्म-साधनको देख कर यह कहना चाहिए कि उन्होंने एक प्रकारसे संसार ही छोड़ दिया है या वे संसारसे सर्वथा छुटकारा पा गये हैं। वसुभूति और समन्तभद्र जैसे प्रतिष्ठित धनी-मानी सेठोंको इस प्रकार धर्म-साधन करते देख कर उनके देखा-देखी अनेक साधारण लोग भी धर्म-

साधन करने लगे। इस प्रकार सारी श्रावस्तीमें वीरप्रभुके पवित्र नाम और शासनका खूब ही प्रचार हो गया। सैकड़ों नये नयें मन्दिर बनवाये गये। हजारों स्त्री-पुरुष उत्साहपूर्वक प्रतिदिन धर्म-साधन करने लगे। इस धार्मिक हल-चलके कारण श्रावस्ती भारतवर्षके इतिहासमें चिरकालके लिए एक महान् तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हो गई। इस प्रकार ब्याहकी धूम-धाम और वसुभूति तथा समन्तभद्रके आनन्द-उत्सवके वर्णनमें पाठकोंका कुछ अधिक समय लेकर हम एक खास बात नहीं लिख सके हैं। और न लिखनेका कारण यह है कि अधिक अधीरता या उत्सुकता बताना हमने उचित नहीं समझा।

वह खास बात ब्याहके बाद होनेवाले रत्नमाला और मणिभद्रके प्रथम परिचय-सम्बन्धकी है। ब्याहके बाद जब रत्नमाला और मणिभद्र दम्पतिके रूपमें शय्या-मन्दिरमें आये तब सबसे पहले उन्होंने वीरप्रभुका पवित्र नामोच्चारण कर आत्म-साक्षीपूर्वक यह शपथ की—प्रतिज्ञा की—कि “ऐसे एकान्त स्थानमें परस्पर हमारे शरीरका स्पर्श न हो जाय इसके लिए हमें खूब सावधानी रखनी चाहिए; और जब रातको एक ही बिछौने पर हम दोनोंको सोनेका प्रसंग आवे तब एक जनेको सोना चाहिए और एकको जगते रहना चाहिए। इसके सिवा कभी ऐसा मौका आ जाय कि हम दोनोंको जगना पड़े तो उस समय हमें धर्म-ग्रन्थोंके अध्ययन-मनन और वीरप्रभुके पवित्र उपदेशके सिवा और कोई विषयकी बात-चीत नहीं करनी चाहिए” इस प्रकार ये दम्पति सदा जागृत रह कर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते रहते थे। वास्तवमें तो इनका उद्देश्य संयम पालन करनेका था; परन्तु बाह्यमें साधारण भावसे ये गृहस्थाश्रमकी बातोंको भी करते रहते थे। उनकी इस बातको कोई नहीं समझ सका कि उन्होंने परस्परमें क्या तो प्रतिज्ञा की है और संसार-सम्बन्धी कार्योंके करते रहने पर भी वे किस धर्ममय पवित्र बन्ध-

नसें-बँध रहे हैं। ज्यों ज्यों धीरे धीरे यौवनका विकाश होता गया त्यों त्यों रत्नमालाका दिव्य सौन्दर्य और अनुपम लावण्य खूब ही देदीप्यमान हो उठा। उसके निष्कलंक और पवित्र चरित्रके प्रभावसे उसका शरीर और मुख इतना प्रतापपूर्ण—तेजस्वी दिखाई पड़ने लगा कि जो एक बार भी रत्नमालाकी देवी प्रतिमाकी ओर आँख उठा कर देख लेता तो फिर यह कभी संभव नहीं था कि उसके हृदयमें रत्नमालाके प्रति भक्ति और पूज्यबुद्धि न हो जाती। इसी प्रकार मणिभद्रके हृदयमें भी कोई प्रकारका क्लेश या वासना न थी। इस कारण उसके शरीर और मुख पर भी पवित्रता और निर्मल चरित्रका उज्ज्वल प्रतिविम्ब पड़ रहा था। इस प्रकार दोनों दम्पतिकी मनोहर मूर्ति दिन दिन खूब ही सुन्दरता धारण करने लगी। सारी श्रावस्तीके लोगोंको यह विश्वास हो गया कि रत्नमाला और मणिभद्रका दाम्पत्य-प्रेम जितना असीम है उतना ही स्वाभाविक भी है। इनके लिए एक क्षण भरका बिछुड़ना भी अत्यन्त ही असह्य हो जाता था। यही कारण है कि कभी मणिभद्रको कहीं बाहर जाना पड़ता तो उसके मुख पर क्लेशकी रेखायें स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती थीं। ये लोग बड़े आनन्दके साथ रहते थे। इनका सगे-सम्बन्धियों और दीन-दुखियोंके साथ व्यवहार इतना अच्छा और सहानुभूति भरा हुआ था कि इनके गृहस्थाश्रमके सम्बन्धमें किसीको रंचमात्र भी सन्देह करनेका मौका नहीं मिलता था। इस प्रकार कितने ही वर्ष बीत गये। वसुभूतिकी उत्कट इच्छा थी कि रत्नमालाके कोई बाल-बच्चा हो जाय तो उसका सुन्दर मुख देख कर फिर मैं शान्तिके साथ मरूँ; परन्तु उनकी इस इच्छाके तत्काल सफल होनेका उन्हें कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। उनने तब यह विचार कर मनको शान्त किया कि चाहे रत्नमाला निस्सन्तान भले ही रह जाय पर इतना तो अच्छा हुआ कि वह संसारमें पड़ गई। जब पूरब पुण्यका उदय आवेगा तब निश्चय है कि उसके सन्तान होगी। हो सकता है कि मेरे भाग्यमें दोहितेका मुख देखना न लिखा

हो । इसमें औरोंका तो कोई दोष नहीं है । इसी प्रकार समन्तभद्रके मनमें भी कभी कभी ऐसी स्वाभाविक इच्छा उठ जाया करती थी । परन्तु दैवी बातमें अपने वशकी कोई बात न देख कर वे अपने मनको किसी प्रकार सन्तोष दे लेते और फिर धर्म-साधनमें लग जाते थे । इस प्रकार कुछ वर्षों बाद समन्तभद्र और वसुभूतिने धर्म-ध्यानपूर्वक शान्तिके साथ अपनी जीवनलीला समाप्त की । मणिमालिनीके एक पुत्र-रत्न हो गया था, इस कारण सुभद्र और मणिमालिनीने पुत्र-रक्षणका सब भार रत्नभद्र और उनकी गृहिणी लीलाको सौंप कर सगे-सम्बन्धियोंकी आज्ञासे जिन-दीक्षा ग्रहण करली और अपनेको वीरप्रभुके शासनकी सेवार्थ उत्सर्ग कर दिया । कुछ समय बाद रत्नभद्र भी अपना सब कारोबार मणि-भद्रके सपुर्द कर स्त्री-सहित तीर्थयात्रा तथा साधु- समागममें दिन विताने लगे । अब मणिभद्र और रत्नमाला यद्यपि सब तरह स्वतंत्र हो गये थे तथापि उन्होंने और भी चिर समय तक संसारमें रह कर अपने संयमका बड़ी दृढ़ताके साथ पालन किया और व्यवहार-कुशलताके साथ अपने अनन्त धनका अच्छे अच्छे कामोंमें उपयोग किया ।

बीसवाँ परिच्छेद ।

विदा ।

श्रावणका महीना है । अमावस्याकी रातको आकाशमें घनघोर बादल घिर रहे हैं । चारों ओर अविरल मूसलधार पानी बरस रहा है । सब दिशाओंको गाढ़े अन्धकारने व्याप्त कर रक्खा है । बीच-बीचमें बिजलीके प्रकाश और कड़-कड़ाहटकी भयंकर ध्वनिसे सोते हुए पक्षिगण जग कर भयके मारे चहचहा उठते हैं । आधी रात्रि प्रायः समाप्त होने पर है । इस समय समन्तभद्रके विशाल गृहकी तीसरी मंजिल पर एक सुसज्जित कमरेमें रत्नमाला और मणिभद्र एक ही सेज पर सोये हुए हैं । रत्नमालाको नींद आ चुकी है, इस कारण मणिभद्र लेटा हुआ पंच परमेष्ठिके पवित्र नामका मन-ही-मन ध्यान कर रहा है । वह इसके लिए बहुत सावधान रहता है कि कहीं अजाने भी परस्परमें किसीका अंगस्पर्श न हो जाय । इस दम्पति युगलने ब्याहके बाद जो जो प्रतिज्ञायें की थीं वे पाठकों पर अविदित नहीं हैं । ब्याह होनेके दिनसे आज तक ये बराबर अपनी प्रतिज्ञाओंको पालते हुए चले आ रहे हैं । और आज भी सदाकी भाँति अपनी प्रतिज्ञा-रक्षाके लिए दोनों पति-पत्नी सावधानताके साथ रात बिता रहे हैं ।

आज मणिभद्रकी आँखोंमें नींदका नाम भी नहीं है । वह कुछ समयके लिए सोतेसे उठ बैठा । आज उसे जान पड़ा कि न जाने किस कारणसे उसके हृदयको एक अव्यक्त वेदना काँटेकी भाँति पीड़ा दे रही है । वह इसका कुछ कारण स्थिर नहीं कर सका कि जिस हृदय-पट पर संसारकी अनित्यता और असारताके चिंतवनका तथा प्रभुके पवित्र उपदेशोंका खूब गाढ़ा रंग चढ़ चुका है वही हृदय एक अलक्षित आकर्षणसे बिजलीकी भाँति

क्यों खिंचा जा रहा है ! अन्तमें उसने इस आकर्षणका कारण अपने हृदयकी दुर्बलता स्थिर की और इस कारण वह उसे फिर बलवान बनानेके लिए वैराग्य-भावनाओंका चिंतवन करने लगा। दुर्भाग्य-वश उसी समय एक खुली हुई खिड़कीके रास्ते ठंडी हवाकी एक मधुर लहर उसके कमरेमें प्रवेश कर गई और रत्नमालाके वक्षःस्थल पर पड़े हुए वस्त्रके साथ किलोले करते हुए उसने उस वस्त्रको दूर हटा दिया। उसी समय बिजलीके चमकनेसे वह सारा कमरा प्रकाशित हो उठा। इस प्रकाशमें मणिभद्रने देखा कि अनिंद्य सुन्दरी रत्नमाला निद्राकी मनोहर गोदमें बड़ी शान्तिके साथ सो रही है। उसके शरीर परकी साड़ी शिथिल हो गई है। उसकी घन-निविड़ कृष्ण-केशराशि इधर उधर बिखर रही है। बिजलीके प्रकाशमें रत्नमालाकी वह सुन्दरता और भी अनन्त गुणी खिल उठी। मणिभद्रने सोचा कि रत्नमालाके सौन्दर्यमें इतनी मोहकता मुझे आज ही क्यों दिखाई दी ! इसका क्या कारण है ! क्या पहले मैंने कभी इस सुन्दरताको नहीं देखा !

वह इस प्रकार विचार ही करता है कि इतनेमें फिर एक बार बिजली चमकी। उसका सारा कमरा फिर प्रकाशमय हो उठा। धीर वीर संयमी मणिभद्र अब तक तो बड़े साहसके साथ अपनी आत्म-रक्षा करता रहा; परन्तु अब वह अपने धैर्यको गँवा बैठा। वह इस बातको भूल गया कि मैं कौन हूँ और किस प्रतिज्ञासे बँधा हुआ हूँ ! वह सतृष्ण नयनोंसे उस सोती हुई सुंदरीके स्वप्नमें काँपते हुए बिम्ब-सदृश ओठोंको एकटक देखने लगा ! जिन बातोंका उसने कभी स्वप्नमें भी अनुभव नहीं किया था उन बातोंके द्वंद्व युद्धने उसके हृदयकी सब निर्मलताके गदला कर डाला। उसका सारा शरीर रोमांचित हो आया। आसुरी और दैवी बलके इस घमासान युद्धमें दैवी बलकी कुछ विजय होना ही चाहती थी कि इतनेमें फिर बिजलीके प्रकाशने उसके कमरेमें अपना अधिकार स्थापित

किया । मणिभद्रके नेत्र अँधेरेमें भी उस सुन्दरीकी ओर ही लग रहे थे। अबकी बारके प्रकाशमें मणिभद्रने देखा कि रत्नमालाकी पृथ्वी-पर लटकी हुई केश राशिके सहारे एक भयंकर सर्प पलँग पर चढ़ रहा है। उसे देख कर वह कुछ डरसा गया; परन्तु साथ ही रत्नमालाके प्राणोंको जोखममें पड़े हुए देख कर उसने निर्भय होकर उस सर्पको हाथोंसे दूर हटानेका प्रयत्न किया । परन्तु इस प्रयत्नमें भय और घबराहटके मारे वह अपने वजनको बराबर न सँभाल सका। इस कारण अचानक उसका हाथ रत्नमालाके उघड़े हुए वक्षःस्थल पर जा गिरा और रत्नमालाके श्वासोच्छ्वासके साथ उसके श्वासोच्छ्वास मिल गये । मणिभद्र रत्नमालाके वक्षःस्थल परसे अपना हाथ उठाना चाहता है कि इतनेमें उसके गाल रत्न-मालाके गालसे छू गये । रत्नमालाको जान पड़ा कि उसके शरीरसे किसीके हाथका स्पर्श हुआ है। वह सहसा चौंक कर जाग गई और झट-पट अपने वस्त्रोंको सँभाल कर उठ बैठी ! उस समय उसका सारा शरीर काँप रहा था । वह बहुत घबरा रही थी । मणिभद्र अब तक भी रत्नमालाके कन्धे परसे अपना हाथ न खींच सका था ।

मणिभद्रकी यह मोह-जड़ता ज्यों ही दूर हुई त्यों ही उसने चौंक कर अपना हाथ खींच लिया; परन्तु उसका शरीर अब तक भी रोमाँचित हो रहा था; और देखनेसे जान पड़ता था कि वह उस अँधेरेमें काँप रहा है। मणिभद्रकी यह दशा देख कर रत्नमालाने उससे पूछा—प्राणनाथ, क्या हुआ ? क्यों आप इस प्रकार अपने आत्माको भूल गये ?

मणिभद्रने कुछ स्वस्थ होकर इस आकस्मिक भयकी सब बातें रत्न-मालासे कह दीं । रत्नमाला इस सब घटनाका कारण मन-ही-मन स्थिर कर कुछ देर तक चुपचाप बैठी रही । इसके बाद उसने कहा—“ प्राण-नाथ, आजकी घटनासे मुझे जान पड़ा कि प्रलोभनकी वस्तुको निरंतर पास रहने पर समय पाकर हमारी इन्द्रियाँ विकारोंकी गुलाम बन सकती

उसने निर्भय होकर उस सर्पको हाथोंसे दूर हटानेका प्रयत्न किया।

—पृष्ठ १२०।

The Manoranjan Press, Bombay.

।। इस कारण अब ऐसे समागमोंसे हमें अपनी रक्षा करनी आवश्यक है। आप यह न समझें कि मैं ये बातें आपको लक्ष्य करके कह रही हूँ। देखिए आपके इस अचानक शरीर-स्पर्शसे नींदमें भी मेरा सारा सरीर रोमांचित हो गया; और अब तक भी इसका रोमांच दूर नहीं हुआ है। देखिए, मैं अब तक काँप रही हूँ। आपके इस स्पर्शने मेरे हृदयमें कितना मोह-विकार पैदा कर दिया! कुछ ठिकाना है! प्राणनाथ, अब हमें इन दुष्ट प्रलोभनोंके बीच पड़ा रहना उचित नहीं है। जिनका मन प्रसन्न करनेके लिए हम लोगोंने इस विषम व्रतको ग्रहण किया था वे तो कभीके परम शान्ति और सन्तोषके साथ स्वर्गस्थ हो चुके हैं। तब फिर हमें क्या आवश्यकता है कि हम इसी कंटकमय रास्ते पर चलते रहें!"

मणिभद्र रत्नमालाकी बातोंको सुन कर झटसे उठ खड़ा हुआ और एक दीर्घ निश्वास डाल कर बोला—"सच कहती हो रत्नमाला, अब इस वैराग्य पूर्ण हृदयसे संसारमें पड़े रहनेकी हम लोगोंके लिए कोई आवश्यकता नहीं। इस संसार-रंगभूमि पर अब हमें खेल करते रहनेकी जरूरत नहीं है। हमने अब तक खूब खेल खेले; परन्तु अब हमें अपने स्वरूपमें आनेका भी यत्न करना उचित है। हम चाहते हैं कि आज इस पवित्र रात्रिमें ही हम लोगोंके सब सांसारिक बन्धन टूट कर हम पूर्ण स्वतंत्र हो जायँ। आओ प्रियतमे, आजसे हम प्रतिज्ञा करें कि तुम मणिभद्रकी स्त्री नहीं और मैं रत्नमालाका स्वामी नहीं! जय महावीर भगवानकी जय! जय वीरशासनकी जय!!"

रत्नमाला हाथ जोड़ कर मणिभद्रके सामने खड़ी हो गई। इस समय उसके मनकी बड़ी विचित्र स्थिति हो रही थी। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह बह कर उसके वक्षःस्थलको भिंगो रही थी। उसने बड़ी कठिनतासे हृदयके वेगको रोक कर कहा—"देखो नाथ, धर्मका पवित्र मार्ग खुला हुआ है। तुम जैसे बलवान हृदयके युवकोंके लिए वीर-शासनकी

सेवाका द्वार सदा ही उन्मुक्त है । सुनो नाथ, स्वर्गके देवता भी तुम्हा स्तुति कर रहे हैं । देखो, तुम्हारी आत्म-विशुद्धिके प्रकाशसे आ त्रिभुवन उद्भासित हो उठा है ! यह आप ही जैसे महापुरुषोंका प्रभाव कि जो मुझ जैसी एक अबला स्त्री भी संसारमें रह कर अपनी आत्म-रक्षाके लिए बलशालिनी हो सकी है । नाथ, मुझे भी आज्ञा दीजिए जो मैं आपके चरणोंका अनुसरण कर यथाशक्ति आपकी संसार-हितकारी प्रवृत्तियों भाग ले सकूँ ।

मणिभद्रने कहा—रत्नमाला, जो तुम चाहती हो वही होगा । हम दोनोंका निर्माण ही इसी लिए हुआ है । मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे हृदयकी भावनायें सफलता लाभ करें । बस और क्या कहूँ । चलो रत्नमाला अब किसीकी अपेक्षा करनेकी जरूरत नहीं है । चलो, अब हम वन-गमन कर हमारा संकल्पित काम सिद्ध करें । रत्नमाला, आज्ञा दो.........

मणिभद्र अपना अन्तिम वाक्य समाप्त करता है कि इसके पहले ही रत्नमाला गद् गद् होकर बोली—"प्राणनाथ, आज्ञा ! मैं किसे आज्ञा दूँ क्या तुम्हें ? जिस पवित्र मूर्तिके दर्शन मात्रसे हृदयमें पूजा करनेकी भावनायें उठने लगती हैं, जिसके कण्ठकी सुमधुर ध्वनि सुन कर प्राण शीतल हो जाते हैं, कानोंमें अमृतकी धारा जैसी बह उठती है, जिसके सहवास से शरीर और मन पवित्र होता है उसे आज्ञा देनेके लिए कहते हो अच्छा प्राणनाथ, बतलाओ तो सही जब मै तुम्हें आज्ञा दे दूँगी तब फि मुझे जीनेके लिए किसका आधार रह जायगा ! नाथ, क्षमा करो, मैं नहीं समझ सकती कि आज मेरा मन इतना अशान्त और निर्बल क्यों बन जा रहा है ! इस बातका कुछ निर्णय नहीं कर सकती कि संसार परित्याग करते समय हृदयमें इतनी घबराहट क्यों हो रही है ! "

इतना कह कर रत्नमाला एक साथ रो पड़ी । हृदयका वेग उससे सँभाला न गया । वह बड़ी देर तक बैठी बैठी रोती रही । जब बहुत र

करने बाद उसके हृदयका भार कुछ हलका हुआ और वह कुछ स्वस्थ हुई तब उसने कहा—“ नाथ, छोड़ो; इस संसारको छोड़ो ! जिस संसारमें फँस कर मनुष्य अपना कर्त्तव्य भूल जाते हैं उस संसारको छोड़ो ! जिस संसारमें मनुष्य अपने आपको भी भूल जाता है उस संसारको छोड़ो ! अब इस संसारमें मोह करनेकी आवश्यकता नहीं है । जाओ; नाथ जाओ; सदाके लिए जाओ ! जिस वीतराग-धर्म-मार्ग पर एक बार भी चलनेसे संसारके जन्म-मरण आदि सब भय नष्ट हो जाते हैं उस मार्ग पर जाओ ! जाओ; प्राणेश्वर जाओ; दुखियोंके दुःख करने और उनकी आँखोंके आँसू पोंछ कर उन्हें धीरज बधानेके लिए जाओ ! जाओ; देव जाओ; अज्ञानान्धकारमें भटकते फिरते संसारी लोगोंको आत्मोन्नतिका प्रकाशमय मार्ग बतलानेके लिए जाओ ! मैं तुम्हे प्रसन्नताके साथ हँसते हँसते बिदा देती हूँ । जाओ; एक सिंह-सदृश पराक्रमी वीर पुरुषकी भाँति स्वतंत्र विचरनेके लिए जाओ ! वीर प्रभुसे मैं प्रार्थना करती हूँ वे तुम्हें नया आत्म-बल प्रदान करें और तुम कृतार्थता लाभ करो ! ” इतना कह कर रत्नमालाने मणिभद्रको बड़ी नम्रतासे प्रणाम किया और मणिभद्र तो वन-गमनकी तैयारी ही कर रहा है कि इतनेमें रत्नमाला संसारका परित्याग कर वन-गमनके लिए रवाना हो गई । रत्नमालाका यह अद्भुत साहस देख कर मणिभद्र भौंचकसा रह गया ! वह अवशिष्ट रात्रि फिर उसे विचार ही विचारमें बिताना पड़ी ।

उपसंहार ।

प्रातःकाल होते ही मणिभद्रने अपने परिवारके लोगोंसे मिल कर उनकी आज्ञासे संसार-विषय-भोगोंको सदाके लिए परित्याग कर दिया । उसके हिस्सेमें जो अपार धन-सम्पदा आई थी उसे उसने जिनमन्दिरोंके बनाने, तीर्थोंके उद्धार कराने आदि धार्मिक कामोंमें दे डाला। इसके बाद मणिभद्र और रत्नमालाने राजगृह जाकर शुभ मुहूर्त्तमें वीरप्रभुके पास दीक्षा ग्रहण करली। दीक्षा लिये बाद मणिभद्र तो मुनि-संघके साथ और रत्नमाला आर्यिका गणके साथ गाँव गाँव विहार करने लगी। मणिभद्रकी उस अपार सम्पत्तिसे भारतवर्षके मुख्य मुख्य नगरों और तीर्थोंमें जो विशाल भव्य जिनमंदिर बने थे वे अब तक भी उसकी पवित्र कीर्ति और गौरवका गान कर रहे हैं। किन्तु इस समय उन पत्थरोंकी आत्म-कथाके सुनने और समझनेवाले नहीं मिलते ।

इस प्रकार धीरे धीरे भारतवर्षके प्रधान प्रधान नगरोंमे पवित्र जैन-शासनका प्रचार बढ़ने लगा । प्रायः स्थानों पर धर्मकी प्रभावना होने लगी। ओ निर्दयी काल! आज वह सब कहाँ चला गया ! मणिभद्र जैसे संयमी युवा और रत्नमाला जैसी साध्वियाँ क्या अब हमारे समाजमें जन्म न लेंगे ! जिन युवक-युवतीके अनन्त बल और पवित्र व्रतके प्रभावसे जैनशासनने सारे संसार पर एक ही साथ दया-शान्ति-क्षमा आदिकी पुण्यभावनायें फैलाई थीं उसी पवित्र शासनकी यह वर्तमान शोचनीय ... न जाने कहाँ तक चलती रहेगी! प्रभो, एक बार फिर हमारे धर्म और समाज पर कृपा कर रत्नमाला-सदृश पुण्य-चरिता साध्वी और मणिभद्र-सदृश पवित्र पुरुष-रत्नोंको उत्पन्न कीजिए! नाथ, ऐसे विशुद्ध हृदय और धर्म-प्राण महात्माओंके, अवतारसे इस वीरप्रसविनी वसुन्धराको—भारतमाताको—फिरसे एक बार गौरवशाली बनाइए !

समाप्त ।